तीन नाटक

[illegible]

8 8

23

23
14
37

23
8
31

6

on Thursday

S = 1
M = 2
Tu = 3
Wed = 4
Thu = 5.
Fri 6

तीन नाटक

आदिम युग
मनु और मानव
कुमार-संभव

श्री उदयशंकर भट्ट

प्रकाशक
पं० राजराजेश्वरप्रसाद भार्गव,
यूनिवर्सल पब्लिशिङ्ग हाउस,
शिवचरनलाल रोड,
इलाहाबाद

मूल्य
३) रु०

मुद्रक
पं० भृगुराज भार्गव
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ

आदिम युग

सृष्टि के प्रारंभ का एक चित्र

आदिम युग के पात्र

स्वायंभुव मनु		आदि मनुष्य
शतरूपा		आदिम स्त्री
ब्रह्मा		चिंतन-छाया
प्रियव्रत	}	स्वायंभुव मनु के पुत्र
उत्तानपाद		
कर्दम		मानस पुत्र
रुचि		मानस पुत्र
आकृती	}	स्वायंभुव मनु की कन्याएँ
देवहूती		
प्रसूती		

स्थान — हिमालय की उपत्यका

भूमिका

भागवत के तीसरे स्कन्ध के बीसवें और इक्कीसवें अध्याय में सृष्टि का वर्णन दिया गया है। इसके अतिरिक्त पुराणों, ब्राह्मण ग्रंथों में भी सृष्टि-उत्पत्ति के प्रकरण को भिन्न भिन्न रूपों में वर्णन किया गया है। वे गाथाएँ एक दूसरे से भिन्न होती हुईं भी इस विषय में एकमत हैं कि स्वायंभुव मनु और शतरूपा-मनुष्य सृष्टि के आदिम स्त्री-पुरुष थे। इससे पूर्व देवताओं, राक्षसों, यक्षों, पिशाचों आदि की सृष्टि बनी। इसमें देवताओं को छोड़कर शेष सब पशु और भावी मनुष्य की श्रेणी के जीव थे। इनमें तामसी वृत्तियों का पूर्ण विकास था। देवता लोग केवल सात्त्विक वृत्ति की सृष्टि थे।

सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीन गुण सृष्टि के निर्माण में मूल तत्त्व हैं; इन तीनों के सम्मिश्रण से ही सृष्टि का निर्माण हुआ। सांख्य-दर्शन के रचयिता कपिल ने एकमात्र अनादि प्रकृति से ही इन तीन गुणों के सम्मिश्रण द्वारा अनंत सृष्टि का विकास बताया है। वस्तुतः मनुष्य के अतिरिक्त पाशविक सृष्टि तामसी है। मनुष्य पशुता के विकास की चरम परिणति है। इससे यह अर्थ लेना अनुचित होगा कि मनुष्य का विकास पशुत्व की चरम परिणति है। यहाँ केवल इतना ही तात्पर्य है कि विकासोन्मुख पशुत्व से ही मनुष्य का निर्माण हुआ है, जिसमें धीरे धीरे अहंकार के साथ बुद्धि, धृति, क्षमा आदि गुण विकसित हुए। इनके साथ ही आदि मनुष्य में जिज्ञासा, तर्क, विचिकित्सा आदि गुण भी प्रादुर्भूत हुए। इन गुणों की विशेषताओं के कारण ही अन्य पशुओं से मनुष्य में भेद हुआ, ऐसा मेरा विश्वास है। किन्तु ये गुण मनुष्य

में इतने धीरे धीरे आये कि उसकी पशुता मनुष्य जाति के कई वंशों तक बनी रही। उस काल की सीमा का निर्धारण करना विचारशक्ति से परे है। फिर भी उन गुणों का विकास हुआ अवश्य।

मनुष्य को जो दस इंद्रियाँ प्रकृति से प्राप्त हुईं वे आदि काल में बहुत ही स्थूल रूप में रही होंगी। उनमें पहली पाँच कर्मेन्द्रियाँ तो यथा नियम अपना काम करती ही होंगी परन्तु ज्ञानेन्द्रियों में अवश्य धीरे धीरे विकास हुआ होगा। उदाहरणार्थ उस विकास का मूल स्रोत बालक है। जिन बालकों को माता पिता द्वारा उन्नत होने का साधन प्राप्त नहीं होता, उनका विकास ध्यान से देखने पर बड़ा कुतूहल पूर्ण होता है। बालक सब वस्तुओं को, अवस्था पाकर भी बड़े स्थूल रूप में देखता है। एक तरह से मनुष्य की बाल्यावस्था मनुष्य जाति की आदिम अवस्था का कुछ आभास दे सकती है। शुद्ध संस्कार-हीन निरवलम्ब बालक के विकास में अपेक्षा कृत अधिक समय लगता है। किन्तु आदि काल का मानव भूख, प्यास, नींद के साथ साथ बालक से एक बात में बढ़ा चढ़ा रहा होगा, वह है जिज्ञासा और शरीर सामर्थ्य। बालक में जिज्ञासा नहीं उन्नत होती। उस मनुष्य को जिज्ञासा आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करती होगी। जिज्ञासा तथा प्राप्ति ये ही दो गुण हैं जिसने उसे निरंतर आगे बढ़ते रहने के लिये प्रेरित किया होगा। किन्तु इससे पूर्व मनुष्य में एक और गुण का होना अपेक्षित है, वह है यथार्थ दर्शन। सृष्टि को, वैसा ही जैसी कि वह है, देखने की क्षमता का प्रारंभ मनुष्य जाति के विकास का आदि स्रोत-कहा जा सकता है। इसके साथ ही अपनी अवस्था से मिलाकर उसमें उपयोगिता को ग्रहण करते रहने की चेष्टा का होना भी आवश्यक है।

प्रश्न यह है क्या मनुष्य ने स्वयं बिना किसी की सहायता के खाने, पीने, सोने के अतिरिक्त जीवन के अन्य रूप को समझा है या किसी की सहायता पाकर वह अपनी पूर्णता की ओर बढ़ा है? इस प्रश्न को मैं दो प्रकार से

समझाने की चेष्टा करूँगा। जहाँ तक धार्मिक ग्रंथों का सम्बन्ध है वहाँ तक मनुष्य सृष्टि की उत्पत्ति में सबसे सहायक एक तीसरा जीव या प्राणी भी है। उसे चाहे ईश्वर कहिये या कुछ। उसी ने मनुष्य का हाथ पकड़कर उसे चलना सिखाया, नदी के पास ले जाकर उसे प्यास शांत करने के लिये पानी पिलाया; और क्षुधा शांत करने के लिये मांस, कंद, मूल, फल खाने की प्रेरणा दी। इसके अतिरिक्त उसने पहले ही उसे बहुत सी बातें सिखा दीं। और वह अपने युग में उत्पन्न होते ही समर्थ प्राणी हो गया। धर्मात्मा और नेक, सत्य असत्य का भेद करनेवाला, पुरुष और स्त्री के संबंध को जाननेवाला भी। किन्तु विकासवादी इसको नहीं मानता। वह मानता है कि अवश्य तृषा शांत करने के लिये धूल, पत्थर, जड़ें, पत्ते, फाँकने, चबाने और खाने के बाद जल के किनारे अचानक पहुँचकर पीने के अनुभव द्वारा ही मनुष्य ने यह निश्चय किया होगा कि 'प्यास लगने पर पानी पीना चाहिये'। इसी तरह भूख लगने पर पानी पीने, पत्थर, धूल, जड़, पत्ते आदि के प्रयोग के बाद फल, फूल खाकर क्षुधा मिटाने का अनुभव हुआ होगा। किन्तु इसमें मनुष्य को कितना समय लगा होगा यह निश्चय रूप से बता सकने की अवस्था में अपने को न पाकर भी मैं कह सकता हूँ कि इस प्रकार के ज्ञान को पाने में मनुष्य को बहुत समय नहीं लगा होगा क्योंकि प्रकृति के यथार्थ दर्शन तथा स्वयं क्षुधा, तृषा ने मनुष्य को इस समस्या के हल करने में सहायता दी होगी।

मैंने इस नाटक में काल के बन्धन को तोड़कर मनुष्य-सृष्टि के आदि-पुरुष स्वायंभुव मनु और शतरूपा के द्वारा उस समय के जीवन की झाँकी देने की चेष्टा की है। स्वायंभुव मनु और शतरूपा तथा उनके पुत्र पुत्रियाँ सब वैदिक एवं पौराणिक पात्र हैं। किन्तु उन पात्रों का चारित्रिक विकास, जहाँ तक मैं निर्माण कर सका हूँ स्वाभाविक है। इन दोनों के सम्मिश्रण में अविश्वास करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता। यदि पुराणों में मत्स्य, बाराह, कच्छप अव-

तारों की कथा के द्वारा मनुष्य के पूर्वजों का इतिहास है तो कोई कारण नहीं कि स्वायंभुव मनु और शतरूपा का वर्णन अतिरञ्जित होते हुए भी मूलतः वास्तविक न हो। स्वायंभुव का अर्थ है अपने आप उत्पन्न होनेवाले का पुत्र। यदि स्वयंभू ब्रह्मा को मान लें तो भी मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती। मैंने स्वायंभुव मनु और शतरूपा की संतान का वर्णन श्रीमद्भागवत के आधार पर ही किया है।

प्रायः विद्वान् मानते हैं कि सृष्टि के आदि ग्रंथ ऋग्वेद की संस्कृत से पूर्व एक प्राकृत भाषा थी। उसी से संस्कृत की उत्पत्ति हुई है। उस प्राकृत भाषा का नमूना आजकल उपलब्ध नहीं है। फिर भी उस समय के कुछ शब्द वेदों में मिलते हैं। जिनके प्रकृति प्रत्यय का ठीक ठीक ज्ञान नही होता। भाषा का निर्माण मनुष्य-सृष्टि के विकास का महत्त्वपूर्ण अंश है। प्रारम्भ में रूढ शब्दों का निर्माण अधिकतर हुआ होगा उसके बाद योग-रूढि और फिर यौगिक। मनुष्य के हृदय में जैसे-जैसे भावों का विकास होता गया वैसे वैसे उन भावों के लिये शब्द गढ़े गये होगे। जैसे किसी वस्तु से डर जाने पर मनुष्य मुख फाड़कर जब पीछे को हटा होगा तब उसके मुँह से 'भ' यह अक्षर निकला होगा। बस, भय शब्द की उत्पत्ति का कारण उसका भय से व्याकुल होकर मुँह फाड़ना है। इसी तरह किसी वस्तु को लेने के भाव को प्रकट करने में 'ल' का प्रयोग होने के कारण 'लेना' का आविष्कार हुआ होगा। परन्तु सब शब्द इसी प्रकार निर्मित हुए होंगे, ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती। कुछ शब्द ध्वनि से, कुछ विशेष व्यक्ति के उच्चारण से, कुछ वस्तु-साम्य से, कुछ रूप-साम्य से बने होंगे। उसके बाद शब्द की शक्तियों का विकास होता गया होगा। सबसे अधिक ज्ञान मनुष्य ने वस्तु को देखकर प्राप्त किया है, सुनकर नहीं। सुनना पीछे की बात है। देखना पहले। देखते रहने और उसके द्वारा मनन करने के कारण हमारे यहाँ दर्शन शास्त्रों का निर्माण हुआ है।

आज जिस तरह कलकत्ता, बंबई को देखकर यह कल्पना करना कठिन है कि ये दोनों नगर प्रारंभ में बहुत ही साधारण गाँव थे। वहाँ न बड़े मकान थे न आजकल जितने महान साधन, फिर भी एक बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्थान का महत्त्व और उपयोगिता ये दोनों प्रारंभ से ही अपने में लिये हुए थे नहीं तो अन्य नगरों की अपेक्षा वे ही इतने महत्त्व शाली नगर न होते ? इसी तरह मनुष्य का रूप भी है। मनुष्य को जो इन्द्रियाँ प्राप्त हुईं प्रकृति द्वारा उनके विकास में मनुष्य की उपयोगिता छिपी थी। आखिर प्रकृति को ऐसे प्राणी की आवश्यकता हुई जो अपने साथ प्रकृति की उपयोगिता को पहचान सके। नहीं तो प्रकृति के सौन्दर्य का क्या उपयोग होता, प्रकृति के विस्तार का क्या महत्त्व होता ? स्वयं प्रकृति ने मनुष्य का विकास किया है। और उसका विकसित रूप समाज, धर्म, राजनीति, संसार के आविष्कारों के रूप में हमारे सामने है। जो प्रकृति नहीं कर सकती थी वह मनुष्य ने किया। किंतु किया उसने प्रकृति के उपकरणों और अपनी बुद्धि से ही है। वह जहाँ समर्थ रहा वहाँ उसने 'अहं' द्वारा अपने को ऊँचा उठाया जहाँ वह निर्बल रहा वहाँ उसने ईश्वर, धर्म की कल्पनाएँ कीं। जैसे प्रकृति में सम्पूर्णता नहीं है वैसे ही मनुष्य में भी पूर्णता का अभाव है। वह अभाव ही उसके विकास की सीढ़ी है। कह नहीं सकते जिस दिन वह पूर्ण हो जायगा उस दिन वह रहेगा भी या नहीं। अभाव जहाँ मनुष्य का दुख है वहाँ वह उसके विकास का प्रयत्न भी है। असमर्थता से भय, अहंकार, सामर्थ्य में ठेस लगने से क्रोध, इच्छा से काम और लोभ उत्पन्न हुए हैं। इच्छा रूप वैविध्य ही सृष्टि का वैविध्य है।

इस नाटक के लिखने में एक बात सहायक सिद्ध हुई है। एक बार, बहुत दिनों की बात है—मध्याह्न का समय था, गरमी के दिन; ऊपर 'सीलिंग-फेन' तेज़ी से चल रहा था। मेरी आँख लग गई। थोड़ी देर बाद जब सोकर

उठा तो देखा कि मेरा शरीर एकबारगी निष्क्रिय हो गया है। हाथ उठाता तो न उठते थे, पैरों को जैसे किसी ने खाट के पायों से बाँध दिया हो।

ज़बान रुक गई थी। एक तरह सब कर्मेन्द्रियाँ निस्तब्ध हो गई थीं। देख रहा था, किन्तु बोल नहीं सकता था। पाँच या सात मिनट की उस अवस्था में मैंने जाना कि यही मृत्यु की दशा है किन्तु उसके बाद मुझे मृत्यु नहीं जीवन मिला और उस अवस्था में मेरी स्मृति-शक्ति धीरे धीरे जाग्रत् हुई। एक एक करके सब कुछ सामने आया। उस अवस्था का कुछ कुछ मिलान मैंने आदिम युग के इन प्राणियों से किया है। अंतर केवल इतना ही है कि इनमें सक्रियता थी किन्तु वाणी नहीं थी। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है प्रकृति ने मनुष्य को बोलने के लिये बाध्य किया है। उसके रूप-सौन्दर्य ने, भय ने आदिम प्राणियों को सब कुछ सिखाया होगा।

ब्रह्मा को मैंने इस नाटक में छाया रूप में रखा है प्रत्यक्ष नहीं। चिंतन का ही मनुष्य में महत्त्व है। जो कुछ बाहर व्यक्ति देखता है वह प्रत्यक्ष दर्शन मस्तिष्क के ज्ञान तंतुओं से जाकर टकराता है। ऐसी प्रत्यभिज्ञा ही उसे यथार्थ रूप से जानने के लिये बाध्य करती है। वह एक वस्तु से दूसरी का भेद करता है। बस, यह भेद-बुद्धि विवेचना है। विवेचना सदा दो वस्तुओं में होती है। वह विवेचना ही मनुष्यता का मूल है। विवेचना बुद्धि से विकास प्रारंभ होता है। विवेचना ही पुरुष और स्त्री का चिंतन है। इसी चिंतन के आधार पर मानव का विकास होता है। इसीलिये पहला दृश्य एक तरह से पुरुष और स्त्री की विचिकित्सा को लेकर चला है। सचमुच, वह समय कितना अद्भुत रहा होगा जब पहली बार पुरुष ने स्त्री की ओर स्त्री ने पुरुष को देखा होगा। वही संसार के निर्माण का प्रथम ब्राह्म मुहूर्त्त कहना चाहिये। वैसे साधारणतया पशु भी एक दूसरे को देखते हैं किन्तु उनके सामने सिवा जड़ दर्शन के और कुछ नहीं होता। यौन-वृत्तियों का

विकास भी उनके लिये कोई महत्त्व नहीं रखता। किन्तु स्त्री और पुरुष के प्रथम दर्शन में तो यौन-वृत्ति पीछे आती है बाह्य एवं प्रत्यक्ष भेद ही उनके सोचने का कारण बन जाता है।

इसीलिये आदिम स्त्री पुरुष के सामने एक दूसरे का अचानक आ जाना कितना महत्त्वपूर्ण है इसको केवल कल्पना से ही समझा जा सकता है। इसीलिये ब्रह्मा स्वायंभुव मनु और शतरूपा की चिन्तना शक्ति है। जिसके लिये अनेकों वर्ष लगे होंगे। मैंने 'समय की एकता' की रक्षा के लिये ब्रह्मा की कल्पना की है। इसके बिना कदाचित् पात्रों का निर्वाह भी न हो सकता।

मनु और मानव

जलप्रलय के पश्चात् जब मनुष्य सृष्टि समाप्तप्राय हो चली थी उसके बहुत दिनों बाद की कथा इस नाटक में है। मनु, वैवस्वत मनु ही हमारी सृष्टि-नाटक की सामाजिक रंगभूमि के प्रधान पात्र हैं। पुराणों में अब तक की सारी सृष्टि को चौदह मन्वंतरों में बाँटा गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वायंभुव मनु से लेकर वैवस्वत मनु तक का काल अब तक बीता है। पुराणों में विस्तार से इसका वर्णन है।

मेरा ऐसा विश्वास है कि मनु नाम ऐसे व्यक्ति विशेष का है जिसका प्रभाव उस युग पर पूर्ण रूप से रहता है। जैसे दिन के कहने से उषा, मध्याह्न और संध्या तीनों कालों का ज्ञान होता है; वर्षा कहने से बारह मासों, तीन सौ पैंसठ दिनों, छहों ऋतुओं के आवागमन का बोध होता है। इसी प्रकार एक मनु के युग का अर्थ है एक प्रकार के ज्ञान प्रसार, विशेष सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व्यवस्था का प्रचलन। उसके साथ रूढ़ियाँ, संस्कार सब बातों को समझ लेना चाहिये। इसीलिये वैवस्वत मनु का तात्पर्य इक्ष्वाकु, और बुध के वंश से लेकर आज तक की आर्य मर्यादा, रहन-सहन, नीति-रीति, आचार-विचार सभी हैं। वैवस्वत मनु इस युग के प्रथम निर्माता कहे जा

सकते हैं। मनु की समाज व्यवस्था का प्रभाव केवल भारतवर्ष पर ही नहीं पड़ा; भारत के बाहर बैबीलोनियन, कैल्डियन, यहूदी, चीनी, यूनानी, ईरानी तथा प्रशान्त महासागर के द्वीपपुंजों में बसनेवाली अन्य जातियों पर भी पड़ा है। यज्ञ और अग्नि के प्रथम आविष्कारक मनु का प्रभाव, उनके निर्मित समाज-विधान अब भी यत्रतत्र प्रचलित हैं और राज्य-निर्माण, राजा की उत्पत्ति, उसके अधिकार तो स्पष्ट ही भारत में न हीं संसार भर में मनु के निर्दिष्ट मार्ग पर ही चले हैं।

इन मनु को उत्पन्न हुए कितना समय बीता यह नहीं कहा जा सकता। आज के ऐतिहासिकों में जहाँ स्वयं इतने पीछे जाने की क्षमता नहीं है वहाँ पुराणों के पीछे चलने में भी वे अपने को असमर्थ पाते हैं। यह हमारे देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है कि हम अनुश्रुतियों, गाथाओं में बिखरे हुए अपने इस महान् व्यक्ति को ज़रा भी नहीं पहचान पाये, और उनके द्वारा परंपरागत प्रकाश की रेखाएँ ढूँढने में असमर्थ रहे हैं। यह दुःख उस समय तो और भी अधिक बढ़ जाता है जब हम पाश्चात्य ऐनकों से देखकर ही अपने व्यक्तियों का मूल्य आँकते या उन्हें 'रिजेक्ट' कर देते हैं। मनु तो बहुत दूर की बात है हम इतिहास के मध्याह्न कालमें उगनेवाले कई महान् नक्षत्रों का प्रकाश भी स्वीकार नहीं कर पाते।

मनु, इसीलिये इतिहास द्वारा पूर्णतया स्वीकार न किये जाने पर भी भारतीय गगन के बहुत ही देदीप्यमान नक्षत्र हैं। जिनके प्रकाश से अब तक संपूर्ण आर्य-संस्कृति आलोकित होती रही है। अतएव मनु के जन्म संवत् को खोजने की मैं आवश्यकता भी नहीं समझता। मेरा काम तो चित्रकार की तरह उस काल का सांस्कृतिक चित्र उपस्थित करना है जिस समय मानव-जाति अज्ञान की रात्रि के ब्राह्म मुहूर्त में अँगड़ाइयाँ ले रही थी। और अपने सामने चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा देखकर न जाने क्या सोच

रही थी कि इतने में कुहरे को चीरकर सुदूरपूर्व से ज्ञान की लाली लिये आत्मचिंतन के प्रकाश के साथ बालरवि-मनु का उदय हुआ।

निश्चय ही यह ऋग्वेद की रचना का काल था। मनु, इडा, श्रद्धा, अत्रि, वशिष्ठ, भृगु, विश्वामित्र आदि ऋषि तथा ऋषि-कन्याएँ, मंत्रदर्शन कर रही थीं, या कर चुकी थीं। जहाँ उनके सम्मुख दिन और रात का, शुक्ल और कृष्ण पक्ष का, वसन्त एवं शरद् ऋतु का, नदियों, पहाड़ों, मैदानों, पुष्पों और पत्तियों का सौन्दर्य उन्हें आप्यायित कर रहा था वहाँ दस्युओं, दानवों का उपद्रव भी उन्हें चैन से नहीं बैठने देता था। इसके लिये उन्हें सदा सतर्क, सचेष्ट और गोत्र बनाकर रहना पड़ता था जिससे शत्रु के आक्रमण से वे अपनी रक्षा कर सकें।

उन बिखरे हुए आर्यों को संगठित करने का श्रेय इस नाटक के प्रधान पात्र वैवस्वत मनु को है। मनु ने अपनी तीक्ष्ण एवं विशाल, सुदूरगामी दृष्टि से मानव मात्र के भविष्य को देखा उसके लिये व्यवस्था की। उस व्यवस्था से संपूर्ण एशिया प्रकाशित हो उठा। ऐसे थे वैवस्वत मनु ?

इडा उनकी कन्या थी। वेदों में इडा का अर्थ है—बुद्धि। मनु को प्रेरणा देनेवाली यही कन्या थी। उसी बुद्धि ने स्त्री रूप में स्त्रियों की आवश्यकताओं को और पुरुष रूप में पुरुषों के पुरुषार्थ को पहचाना। जिस प्रकार मंडन मिश्र की पत्नी से पराजित ब्रह्मचारी शंकर को यौवन के सौन्दर्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिये योग बल से राजा के शरीर में प्रवेश करना पड़ा था। रूपक होते हुए भी कौन कह सकता है कि इडा के वे दोनों रूप प्रकृति के विरुद्ध थे ? शेष पात्र सब अपनी जगह जैसे हैं वैसे ही उन्हें समझना चाहिये।

एक बात और—मनु के पुत्र इक्ष्वाकु से सूर्य वंश और बुध के संयोग से इडा के द्वारा चंद्र वंश चला, जो आज तक भारत में प्रचलित हैं। मनु ने वर्ण-विभाग किये हैं वे केवल समाज की व्यवस्था चलाने के लिये, धर्म और

नीति के विस्तार के लिये। इसीलिये पाठक देखेंगे मनु के दश पुत्रों में आर्य-जाति के पुनः संगठन के समय कुछ पुत्र ब्राह्मण बन गये और कुछ क्षत्रिय बनकर राज्य विस्तार करने लगे।

मनु एक प्रकार से बुद्धिवादी थे। यज्ञ की महत्ता आर्य-जाति को संगठित करने के लिये उन्होंने उस समय के आर्यों को सुझाई। नित्य, नैमित्तिक यज्ञों के विधान किये। यज्ञकर्ताओं, यजमानों को यज्ञ के लिये प्रोत्साहित किया। प्रजा के दशांश द्वारा राज्य की नींव डाली उस समय नित्य नये होनेवाले दस्युओं के उपद्रवों को रोका आदि आदि।

मनु के सम्बन्ध में एक बात और लिखकर मैं इस प्रस्तावना को समाप्त करूँगा वह यह कि ऋग्वेद के कुछ सूक्तों के द्रष्टा मनु हैं। शतपथ ब्राह्मण, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, पुराण आदि सभी ग्रंथों में मनु के सम्बन्ध में यत्र तत्र बहुत बातें बिखरी हुई मिलती हैं। मैंने प्रयत्न किया है कि उन सबको एकत्र करके एक ढंग से सजाकर पाठकों के सामने रख दूँ किन्तु नाटक लेखक होने के नाते इस महान चरित्र को नाटक का प्रधान पात्र बनाने का मैं लोभ संवरण नहीं कर सका। यदि इस नाटक के चरित्रों से मेरे देश की संस्कृति का कुछ भी ज्ञान पाठक एवं दर्शकों को प्राप्त हुआ तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा। इसके साथ ही इस नाटक के चरित्रों में जो त्रुटि रह गई है वह मेरी अक्षमता है पात्र तो एक से एक महान हैं।

कुमार-संभव

कविवर कालिदास के कुमार-संभव लिखने के समय की एक छोटी सी घटना है कि कवि को पार्वती का शृंगार वर्णन करने के कारण शाप मिला। इस कारण वे इस महान काव्य को पूरा नहीं कर पाये।

विद्वानों का विचार है कि चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के उत्पन्न होने

के उपलक्ष में कवि ने इस ग्रंथ की रचना की थी और वह काव्य कुमार को ही भेंट किया गया।

मैंने इसी आधार पर एकांकी नाटक की रचना की है। इसमें प्रसंग-वश, न चाहते हुए भी देवता पात्र बन गये हैं। इस नाटक की रचना मैंने सम्राट् विक्रमादित्य की सहस्राब्दि के उपलक्ष में लिखे जानेवाले स्मृति ग्रन्थ के लिये की थी किन्तु न जाने क्यों वह कार्यक्रम स्थगित हो गया। अब मैं इस नाटक को यहाँ दे रहा हूँ।

तीनों नाटक तीन युगों के सांस्कृतिक चित्र हैं।

श्रावण नागपंचमी २००१
सनातन धर्म कालेज,
लाहौर।

उदयशंकर भट्ट

आदिम युग

पहला दृश्य

(प्रागैतिहासिक काल में)

[पहला दृश्य केवल नाटक की भौगोलिकता दिखलाने के लिए ही लिखा गया है। दृश्य बदलते जायँगे और नेपथ्य से कोई इसका वर्णन करता रहेगा।]

पूर्व की ओर हिमालय की तलहटी के तीनों ओर अपार समुद्र लहरा रहा है। लहरें उछल-उछल कर समुद्र और आकाश को एक बनाये दे रही हैं। दूर तक नीला जल और नीलाकाश दिखाई दे रहे हैं। और ऐसा देख पड़ता है कि आगे जाकर समुद्र और आकाश एकाकार हो उठे हैं। पश्चिम की तरफ़ छिपनेवाले सूर्य की लाली समुद्र की उत्ताल तरंगों में रोली की बोरियाँ डालकर उन्हें कहीं लाल, कहीं पीला, कहीं बिलकुल सफेद, कहीं नीला बना रही हैं। मानों सहस्रों इन्द्रधनुष किसी ने समुद्र में जमा कर रखे हैं। प्रातः काल सूर्योदय के समय पहाड़ों पर जमी बर्फ कहीं आग की तरह पीली और लाल हो जाती है। वृक्षों, लताओं से छन-छनकर धूप श्वेत, कर्बुर, पीत रंग भर रही है। कभी-कभी दोपहर को, जब सूर्य ऊपर आ जाता है तब सब कुछ चमकने सा

लगता है। बरसात में मूसलाधार पानी की धारें ऐसी देख पड़ती हैं मानों समुद्र और आकाश को किसी ने मोटी, सफेद सूत की रस्सियों से बाँध दिया है और हिमालय के ऊपर बर्फ पड़ने से ऐसा देख पड़ता है मानों हिममय सब जगत् हो गया है। चाँदनी रात में तो बर्फ, पर्वत, समुद्र, आकाश बिलकुल सफेद हो गये हैं। मानों संसार भर में किसी ने दूध ही दूध या बर्फ के कण उड़ेल दिये हों या स्फटिक की पतली चादर बिछा दी हो। कृष्ण पक्ष की रात में आकाश की कुछ तारिकाओं को छोड़कर किसी विराट् तिमिर ने विश्व को ग्रास कर लिया है। छप् छप् की घनघोर और हृदय-विदारक ध्वनि में वह कालापन और भी उद्बुद्ध, चेतन तथा जागरूक हो उठा है। मानों मृत्यु के मुख में जाते हुए विश्व के सम्मुख कोई अनन्त अंधकार महानाश सा मुख फैलाये बढ़ा आ रहा है। उसने इस समस्त प्रत्यक्ष को अपने काले जबड़ों में दबा लिया है। उस समय तारे आकाश में आशा की तरह मध्यम ज्योति कणों को लेकर उसे स्थिरता की सान्त्वना देने निकले हों।

पूर्व की ओर गन्धक, लाख और चपड़े की तह जमे हुए पहाड़ों पर थोड़ी छिदरी भूरी घास उग रही है। वृक्षों में केवल वट, पीपल, सागोन, अर्जुन, साखू, चुनार ही उग सके हैं, जो बेढंगे तरह से इधर-उधर निस्तब्ध खड़े हैं; जिनमें कहीं-कहीं कोपलें फूट रही हैं। कहीं-कहीं पत्ते भी निकल आये हैं। कुछ पौधों में धतूरे और कहीं-कहीं बेल भी दिखाई पड़ते हैं। कहीं-कहीं ठंडे और गरम पानी के झरने भी पहाड़ों से बह रहे हैं। दूर तक लम्बी उस तलहटी में, जिसके किनारे समुद्र की लहरों से छप् छप करते रहते हैं, कहीं विचित्र ढंग के साँप और मगरों के रेंगने के चिह्न भी दिखाई पड़ते हैं। कभी कोई पक्षी भी इधर-उधर चहकते सुनाई पड़ते हैं। ये पक्षी देखने में कुछ अजीब और महाकाय दिखाई पड़ते हैं। कभी-कभी कोई विशालकाय जलचर जल से निकलकर ज़मीन पर रेंगता है और थोड़ा-सा आकाश में उड़ने का यत्न भी करता है।

फिर हारकर उदधि में समा जाता है। इधर समुद्र में ऊँची लहरों के साथ साठ सत्तर फुट का कोई जन्तु उछलकर फिर पानी की सतह पर तैरने लगता है और लहरों के वक्षःस्थल को चीरकर पानी में मग्न हो जाता है। पहाड़ों के समान पानी की लहरें जब किनारे से आकर टकराती हैं तब उस गम्भीर गर्जन से, उस प्रखर आक्रमण से तट के प्राण काँप उठते हैं। ऐसा ज्ञात होता है मानों यह सबल उदधि अपनी आकाशचुंबी विशाल लहरों से आकाश में छेद करनेवाले पहाड़ों को उनके शिखरों के साथ एक ही लहर में निगल जायगा। और हारकर लौटते हुए तो मानों उसके क्रोध का वेग सहस्रगुना उग्र हो उठता है।

इसी समय एकाएक दिखाई पड़ता है कि पूर्व की ओर एक पहाड़ की चोटी से धुआँ निकल रहा है। वह धीरे-धीरे बढ़ता जाता है। और सारे प्रदेश में छा जाता है। बड़ी-बड़ी छिपकलियाँ जिनका आकार ६० और १०० गज के लगभग है, उस धुएँ से छटपटाने लगती हैं। हाथी बड़ी शीघ्रता से जंगलों से भागने लगते हैं। उनमें से कुछ शीघ्रता से भागने के कारण झाड़ियों में उलझ भी गये हैं। फिर भी बलपूर्वक लताओं और झाड़ियों को चीरकर वृक्षों को गिराकर भाग रहे हैं अनिर्दिष्ट दिशाओं में। होते-होते धुएँ का वेग इतना उग्र हो उठता है कि एकबारगी अँधेरा-सा छा जाता है। उस समय चिंघाड़, चीत्कार की ध्वनि ही केवल सुनाई पड़ती है और वेग के साथ वह पहाड़ फूटने लगता है। भूकम्पन होता है। पहाड़ टकराने और वृक्ष टूटने लगते हैं। झरने बहना बन्द हो जाते हैं और कहीं नदी की तरह बहने भी लगते हैं। कहीं समतल भूमि में खाई-खन्दक दीखने लगते हैं।

गड़गड़ की ध्वनि से उस प्रदेश की भयंकरता और भी बढ़ जाती है। भूधर से गन्धक की नदी-सी बहने लगती है, जिसमें बहुत-सी छिपकलियाँ और हाथी बहते हुए दिखाई पड़ते हैं। समुद्र तक बहकर जाते हुए उस गन्धक के

नद का दृश्य और भी भयानक हो उठता है। कहीं-कहीं देख पड़ता है कि छिपकलियाँ पहाड़ों के टकराने तथा उनमें दरारें हो जाने के कारण बीच में फँस गई हैं। उस समय अपने निकलने के लिये जो बल-प्रदर्शन वे करती हैं उसे देखकर तो प्राण काँप उठते हैं। कोलाहल तो इतना अधिक बढ़ जाता है कि उससे प्रलय की सम्भावना देख पड़ने लगती है।

उसी अंधकार में चलते हुए दो प्राणी दिखाई देते हैं। और दौड़ते हुए एक दूसरे से टकरा जाते हैं। दोनों आँखें फाड़कर एक दूसरे को देखते हैं पर कुछ दीखता नहीं है। धीरे-धीरे प्रकाश हो जाता है। उन्हें मालूम होता है, जहाँ वे आकर टकराये हैं, वहाँ पहाड़ की तराई में एक झरना बह रहा है। अपेक्षाकृत घास भी अधिक है। कुछ फूलों के वृक्ष हैं। झरने के पास सिटपिटाया सा चमरी मृग का एक जोड़ा बैठा है। दोनों एक दूसरे को देखकर आश्चर्य, भय, जिज्ञासा से विभोर हो उठते हैं। मानों संसार में आज कोई नई, अनहोनी, असंभाव्य बात वे देख रहे हैं। इसी समय एक नीलगाय आती है और झरने के पास आकर बैठ जाती है। चिपक कर बैठे हुए लंगूर भी कभी-कभी किलकारियाँ भरने लगते हैं। बहुत देर तक दोनों के एक दूसरे को देखने के बाद पुरुष नीलगाय की ओर देखकर उसे पकड़ने दौड़ता है। गाय सहम जाती है और पुरुष उसे पकड़ लेता है। स्त्री पुरुष की ओर कनखियों से देखती हुई चमरी के ऊपर हाथ फेरती है। हाथ फेरने से मृगी के शरीर के बालों में फुरफुरी हो उठती है। वह पहले कई बार बिदककर हट जाने पर भी स्त्री की ओर देखकर आँखें बन्द कर लेती है।

पुरुष के शरीर पर बड़े-बड़े रोंगटे, गोरा रंग, बिखरे हुए घूँघरवाले सिर के बाल, चौड़ा माथा, बड़ी-बड़ी और लाल आँखें, लम्बी नाक, मूँछों की जगह रेखें फूट रही हैं। पतले होट, लम्बा मुख, बलिष्ठ बाहु, सुता हुआ गठीला शरीर, कभी चंचल, कभी स्थिर, कभी क्रोधयुक्त आकृति पुरुष की

दिखाई देती है । नाभि से नीचे और घुटने से ऊपर तक का भाग वृक्ष की छालों से ढका हुआ है। पुरुष की अपेक्षा स्त्री के शरीर पर थोड़े रोंगटे, गोल शरीर, पीठ तक लटकते बेतरतीब बाल जिनमें गुलझटें पड़ी हैं। माथा अपेक्षाकृत छोटा, आँखें श्वेत और मादक, बड़ी-बड़ी मानों कूटकर भरे हुए स्फटिक के दो कमल हों। भौंहें तनी हुई, कुछ लाली लिये कपोल, नाक लम्बी और उसकी नोक ओठ की तरफ़ झुकी हुई। पतले और लाल ओठ, छोटी कतारवाली चमकती दन्तपंक्ति, हँसता हुआ चेहरा, गोल बाहु, लम्बी और पतली उँग-लियाँ—जिनमें नाख़ून बढ़ रहे हैं। छाती से घुटने तक वृक्षों की छाल उसी की पतली रस्सी से बँधे हुए तथा मिट्टी से सने हुए सुघड़ पैर।

स्त्री, पुरुष को गाय पकड़कर लाते देख चमरी मृग की तरफ़ देखती हुई भी कनखियों से पुरुष को देखती रहती है। उसकी आँखों में भय, जिज्ञासा, कुतूहल का भाव भर जाता है। स्त्री को देखकर पुरुष को पहले अभिमान, फिर आश्चर्य, फिर उत्सुकता होती है। वह अपने शरीर को देखकर नारी के अंगों को देखता है। स्त्री भी उत्सुकता से अपने अंगों को देखकर पुरुष के अंगों से अपना मिलान करती हुई देख पड़ती है। पुरुष झपट कर मुँह से झरने का पानी पीने लगता है और अपना अंग भी पानी के प्रतिबिम्ब में देखता है फिर स्त्री की ओर देखता है। उत्सुकता से फिर समता करते हुए पानी में अपनी छाया देखता है। स्त्री भी वही क्रिया करती है। फिर पशुओं की ओर देखती है। एकाएक पुरुष की ओर बढ़ती है, फिर ठहर जाती है तथा पास के मृग के समीप जाकर उसके शरीर पर हाथ फेरती है। उस अवस्था में भी उसका ध्यान नर की ओर ही रहता है। इसी बीच नर नारी के पास आकर खड़ा हो जाता है। और ध्यान से नारी के अंग देखने लगता है। मृग का जोड़ा नर को पास आया जान भागने लगता है। नारी जो पहले मुस्करा रही थी, सकुचा जाती है। तथा एक वृक्ष के तने से सटकर खड़ी हो

जाती है और नर की ओर देखने लगती है। मृग को बढ़ता देखकर उसे पकड़ने के लिए बढ़ती है और आँखों से ओझल हो जाती है। थोड़ी देर में झरने से दूर टीले पर दिखाई देती है। नर इसी बीच पहले तो उसे ढूँढता है फिर एकाएक 'आ' 'आ' की आवाज़ करता है। स्त्री टीले पर से मुस्कराती है। नर उधर ही संकेत करता है। एक सिंह नारी की ओर बढ़ता है। नर उसे देखकर हाथ से संकेत और मुँह से 'ई ई' करता है। नारी नर के संकेत से सिंह को देखती है। वह कुछ सकपकाकर स्तब्ध सी रह जाती है। जब सिंह नारी के पास आकर मुँह फाड़ता है तब वह डर जाती है। सिंह गुर्राकर झट से नारी को दबोच लेता है। नारी 'हूँ हूँ' करके सिंह को पीछे ढकेलती है, पर नीचे एकदम ढलान होने के कारण किनारे पर विवश-सी खड़ी होकर नर की ओर प्रार्थना की दृष्टि से देखती है। सिंह पंजों से उसे दबा कर गिरा देता है। नारी क्रोध में सिंह को पीछे हटाती है पर हटा नहीं पाती। नर पहले तो अट्टहास करके हँसता है, फिर ध्यान से देखता है कि नारी संघर्ष से धीरे-धीरे थक रही है। और चुप-सी हो गई है। तब वह सिंह की तरफ़ झपटता है। पास जाकर सिंह से लड़ने लगता है। नारी, जो अब तक थकी हुई और पंजों की खरोंच से मूर्च्छित हो गई थी, त्राण प्राप्त करके नर और सिंह का युद्ध देखती है।

जब सिंह पुरुष को पीछे ढकेल देता है तब 'हू हू' करके चिल्लाती है और जब पुरुष सिंह को गिरा देता है तब ताली बजाकर अट्टहास करती है। निरन्तर युद्ध होते रहने के कारण सिंह थक जाता है और एकबारगी छलाँग मारकर आँखों से ओझल हो जाता है। ख़ून के खरोंच पोंछकर हाँफता हुआ पुरुष विजयी की भाँति उठता है और पास एक शिला पर बैठ जाता है। नारी दयार्द्र सी होकर उसके पास जाती है और घास तोड़कर उसका रुधिर पोंछने लगती है। जब देखती है कि रुधिर फिर भी नहीं रुक रहा है तब उसे नीचे

उतार लाती है और झरने के पास लेजाकर पानी से उसके घाव धोने लगती है तथा एक वृक्ष की छाल तोड़ कर उसके अंग को लपेट देती है। पुरुष स्त्री से पहले तो कुछ नहीं बोलता फिर सामर्थ्य पा जाने पर उसका हाथ झटक देता है। स्त्री संकुचित होकर पीछे हट जाती है तथा पुरुष की ओर देखती रहती है। पुरुष फिर एकदम अट्टहास करके वृक्ष पर चढ़ जाता है और एक लंगूर को पकड़ने लगता है। लंगूर एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूद जाता है। पुरुष भी उसी तरह दूसरे वृक्ष पर कूदकर लंगूर की पूँछ पकड़ उसे खींच लेता है और दोनों नीचे आ जाते हैं।

स्त्री भययुक्त कृतज्ञता तथा उसके साहस पर मुग्ध होकर मुस्कराती है। पुरुष लंगूर की पूँछ पकड़कर खेल ही खेल में उसे वृक्ष की तरफ़ उछाल देता है। फिर स्त्री की ओर मुड़ता है। स्त्री भी मृग को छोड़कर पुरुष की ओर बढ़ती है।

दोनों आमने-सामने खड़े हो गये हैं। नर में हर्ष है, नारी में उत्सुकता और लालसा। नर नारी के शरीर की ओर देख हँसता हुआ उसके अंग छूता है। नारी एकदम पीछे हटकर नर की ओर देखने लगती है। नर इधर-उधर देखता हुआ कुछ सोचता है और नारी के पास जाकर उसके शरीर को छूने लगता है। नारी डरी-सी उस ओर देखती है परन्तु शरीर छूने देती है। ऐसा मालूम होता जैसे कोई अननुभूत रोमांच उसे हो रहा है।

पुरुष—पहले नारी की उँगलियाँ पकड़ता है। फिर उसके बाहु पर हाथ फेरने लगता है तथा सिंह द्वारा की गई हाथ की खरोंच को साफ़ करके हँसने लगता है।

स्त्री—भेदभरी दृष्टि से पुरुष की ओर देखती हुई उसके साथ चलने लगती है। फिर एकदम हाथ छुड़ाकर पीछे आती हुई गाय के शरीर पर हाथ फेरने लगती है।

पुरुष—पहले खड़ा देखता है। फिर वह भी गाय के पास चला जाता है और स्वयं गाय के शरीर पर हाथ फेरने लगता है। गाय उसके शरीर पर हाथ रखते ही बिदक जाती है।

स्त्री—गर्व से तथा भेदभरी दृष्टि से पुरुष को देखती है।

पुरुष—धीरे-धीरे क्रोध में आकर गाय को पकड़ लेता है। गाय छिटक कर अलग हो जाती है। वह उसे फिर दबोच लेता है।

स्त्री—पुरुष के हाथों से उसे छुड़ाने लगती है।

पुरुष—स्त्री की ओर देखते हुए हँसकर गाय को छोड़ देता है।

इसी समय सूर्य एकदम छिप जाता है। मेघ गड़गड़ाकर गर्जने लगते हैं। हवा तेज़ हो जाती है। लंगूर किलकारियाँ भरकर कूदने लगते हैं। मृगों का जोड़ा चौकड़ी भरने लगता है। पुरुष प्रत्येक गर्जन पर अट्टहास करता है। स्त्री हँसती है। वर्षा आरम्भ हो जाती है। सब पशु-पक्षी भागते हुए भीगने लगते हैं। पुरुष और स्त्री भी एक दूसरे की तरफ़ देखते हुए भीग रहे हैं। फिर दोनों पास के वृक्ष की छाया में खड़े हो जाते हैं। सर्दी बढ़ने लगती है। दोनों खड़े ठिठुरते हैं। पुरुष सर्दी के मारे वृक्ष के एक तने से चिपट जाता है। स्त्री भी उसी तने के दूसरे भाग से सटकर खड़ी हो जाती है। घोर अँधेरा छा जाता है। स्त्री डरकर काँपने लगती है। पुरुष दाँत कटकटाता है। बिजली चमकती है। पहाड़ से बर्फ़ के तोदे टूटकर बहने लगते हैं। झरनों में पानी बढ़ आता है। एक कम्पन सा होता है। बिजली कड़कने लगती है। स्त्री डरती है। नाले के पानी के ज़ोर से स्त्री के पैर उखड़ने लगते हैं। वह चिल्लाती है और पुरुष को पकड़ने लगती है, पर दीख न सकने के कारण और भी घबरा जाती है। इतने में बिजली फिर ज़ोर से चमकती है। पुरुष स्त्री की ओर देखता है। स्त्री पुरुष की ओर देखती है। दोनों एक दूसरे से चिपट जाते हैं।

दूसरा दृश्य

(समय—मध्याह्न)

[पहाड़ का वही भाग। एक शिलाखण्ड पर कुछ पत्थर जुड़ जाने से गुफा सी बन गई है। उसके आगे दो बड़े पत्थर पड़े हैं जिन पर पृथक् पृथक् स्त्री-पुरुष बैठे हैं। सामने मृग का एक जोड़ा धूप सेंक रहा है। स्त्री-पुरुष भी धूप सेंक रहे हैं। दोनों का ध्यान किसी भिन्न दिशा में है। बहुत से कबूतरों के जोड़े सामने वृक्ष पर बैठे किलोलें कर रहे हैं और चोंच से एक दूसरे को प्यार करते हैं। स्त्री उधर ही देखती है और पुरुष को उधर देखने के लिये संकेत कर रही है। केवल सतर्क-सी ध्यानमग्न-सी उधर देख रही है।]

स्त्री—(केवल कुछ बोलना सीखी है) देखो देखो ?

पुरुष—हाँ हाँ, (वह कबूतरों की ओर देखकर दूसरी तरफ़ देखने लगता है)

स्त्री—देखो यह क्या ?

पुरुष—देखता हूँ! (फिर देखकर दूसरी ओर देखने लगता है। स्त्री उठकर उसके कन्धे पर हाथ रख लेती है। पुरुष बार बार ध्यानभंग हो जाने से झल्ला कर स्त्री का हाथ झटक देता है और उठकर क्रोध से लाल लाल आँखें करके उसकी ओर घूरता है) मत बोलो।

स्त्री—(पुरुष का निहोरा सा करती हुई) यह क्या हुआ ? तुम ऐसे क्यों हो गये फिर ?

पुरुष—मत बोलो।

स्त्री—तुम्हें यह क्या हो गया है ?

पुरुष—(एक पास पड़ा पत्थर उठाकर स्त्री की तरफ़ तानता है। स्त्री डर जाती है। 'हैं हैं' करती है। पुरुष थोड़ी देर ताने रहकर न जाने क्या सोचकर कबूतरों की तरफ़ फेंक देता है। कबूतर उड़ जाते हैं। पुरुष अट्टहास करके)

देखा ! (**इतने में देखते हैं, एक बड़ी गिलहरी दूसरी गिलहरी पर झपटती है और दूसरो भी उस पर झपटती है। दोनों लड़ती हैं। दोनों के शरीर से खून बहने लगता है और लड़ती लड़ती भाग जाती हैं। सोचकर**) यह क्रोध है।

स्त्री—यह क्रोध है, यह तो बुरा है। तुम्हें भी यही हो गया था। ऐसे मत बनो। देखो, मुझे यह कभी क्या हो जाता है ? (**काँपने लगती है**) ।

पुरुष—तुम ऐसा क्यों करती हो। यह नहीं होना चाहिये।

स्त्री—जब तुम्हें क्रोध होता है तब मुझे ऐसा ही हो जाता है। यह क्या है ?

पुरुष—(**सोचकर**) यह भय है।

स्त्री—'भय' यह भी बुरा है। यह भी बुरा है। (**पुरुष से लिपट जाती है। पुरुष उसे अलग कर देता है।**) आह।

पुरुष—क्यों ? ऐसा क्यों है ?

स्त्री—(**घबराती हुई**) मुझे भय हो जाता है। तुम्हें क्रोध हो जाता है। यह दोनों बुरे हैं। दोनों बुरे हैं।

पुरुष—(**एकदम**) जाता हूँ, जाता हूँ। (**जाने लगता है**)

स्त्री—कहाँ, कहाँ जाते हो ? (**आगे बढ़कर उसे रोकती है**)। मत जाओ।

पुरुष—(**घूरकर**) क्यों !

स्त्री—मुझे होता है मत जाओ क्या है यह, क्या कहूँ !

पुरुष—इच्छा।

स्त्री—इच्छा ? हाँ इच्छा है तुम मत जाओ। तुमने यह सब कहाँ से कहाँ से......।

पुरुष—सीखा !

स्त्री—कहाँ से सीखा ?

पुरुष--ब्रह्मा से, ब्रह्मा बड़ा है हमसे बड़ा, हमारा जैसा वह मुझे सिखाता है ।

स्त्री--मैं भी सीखूँगा । कहाँ है, कहाँ है वह, हम कौन हैं ?

पुरुष--'सीखूँगी' कहो ।

स्त्री--सीखूँगा, क्यों नहीं । बोलो सीखूँगा ठीक है ।

पुरुष—तुम स्त्री हो ।

स्त्री--(**उत्सुकता से**) स्त्री, स्त्री क्या ?

पुरुष--तुम नारी हो ।

स्त्री—यह पहले क्या कहा ?

पुरुष—स्त्री, नारी ।

स्त्री—स्त्री, नारी, और तुम भी नारी हो ?

पुरुष--नहीं, पुरुष, नर ?

स्त्री--(**आश्चर्य से**) पुरुष, नर, क्यों ?

पुरुष—ब्रह्मा ने कहा है । हम नर-नारी हैं, पुरुष-स्त्री हैं ।

स्त्री—नर-नारी, पुरुष-स्त्री । क्यों क्यों ऐसा क्यों ? उसने उसने मुझे देखा ?

पुरुष--वह कभी-कभी आकर बताता है ।

स्त्री—कब आया था ?

पुरुष--जब तुम (**नींद की ओर संकेत करता है**) जब तुम यों हो जाती हो (**आँखें बन्द करके सोने का नाट्य करता है**) तब आया था ।

स्त्री—वह मुझे क्या हो गया था ?

पुरुष—सो गई थी । वह निद्रा कहाती है । तब वह आया था ।

स्त्री—(**सोचकर**) जब निद्रा हो गयी थी तब वह आया था । वह नर है ?

पुरुष—क्या जाने । पूछूँगा !

पुरुष—मैं जाता हूँ ।

स्त्री—(**घबराकर**) तुम जाते हो, तो क्या कहूँ, क्या होता है न जाओ। मैं भूल गई।

पुरुष—इच्छा।

स्त्री—हाँ हाँ। इच्छा होती है न जाओ।

पुरुष—नहीं, मैं जाऊँगा। ब्रह्मा ने कहा है—तुम पुरुष हो। कुछ करने जाओ।

स्त्री—(**हैरानी से**) करने, क्या करने ?

पुरुष—यह तो मैं भूल गया पर जाना होगा।

स्त्री—(**आगे बढ़कर**) ठहरो। (**बाहर निकल जाता है स्त्री घबराकर**) मुझे कैसा होता है ! (**उसी समय मानस शरीरधारी ब्रह्मा का प्रवेश एक छाया सी देख पड़ती है**) यह मुझे क्या हो गया है, यह मुझे क्या हुआ ? वह चले गये, छोड़कर ? यह मुझे कैसा होता है।

ब्रह्मा—घबराहट, भय।

स्त्री—इधर उधर देखकर घबराहट, भय उन्होंने कहा था ? **(इधर उधर देखकर)** तुम कौन हो ! कुछ भी नहीं देख पड़ता। हाँ मैं डर गई हूँ। घबराहट हो गई है। यह ऐसा क्यों होगया ?

ब्रह्मा—यह स्वभाव है !

स्त्री—(**इधर उधर देखकर**) स्वभाव ? स्वभाव क्या होता है, यह कौन बोलता है ?

ब्रह्मा—ऐसी अवस्था में इस प्रकार का ही भाव होता है।

स्त्री—ऐसा भाव होना स्वभाव है। अच्छा, मैं चाहती हूँ वह न जाते। वह कब आवेंगे ? कब आवेंगे ?

ब्रह्मा—(**कोई जवाब नहीं मिलता**)

स्त्री—तुम कौन हो, दिखाई कुछ भी नहीं देता।

ब्रह्मा—(कोई उत्तर नहीं मिलता, थोड़ी देर बाद) नारी ?

स्त्री—(उत्सुक होकर) क्या कहा, नारी; उन्होंने कहा था नारी ! मैं नारी हूं ।

ब्रह्मा—तू नारी है, स्त्री ।

स्त्री—और वह कौन है ?

ब्रह्मा—नर, पुरुष !

स्त्री—ठीक, नर, पुरुष । पर वह गये क्यों, आये क्यों नहीं ? आये क्यों नहीं ?

ब्रह्मा—वह पुरुष है और तू स्त्री है । तू यह सब देख रही है ।

स्त्री—देख तो रही हूँ ।

ब्रह्मा—यह सब क्या है ?

स्त्री—(चारों ओर देखकर) देख तो रही हूं पर जानती नहीं हूं यह क्या है ? यह सामने क्या है पतला पतला । बहुत बड़ा । मैं चाहती हूं जानूं, यह सब क्या है ? मेरी यही इच्छा है । मैं सोचती हूं उनसे पूछूँ । तुमने उनसे क्या कह दिया ? वह क्या करने गये हैं ?

ब्रह्मा—करना ही स्वभाव है ।

स्त्री—क्या यह सब स्वभाव है ?

ब्रह्मा—हाँ, यह तुम जो सामने देख रही हो, यह क्या है, यह समुद्र है । तुमने देखा ?

स्त्री—हाँ सोचती हूँ यह क्या है पर यह तो जल है । ऊपर से गिरता है और यहाँ इकट्ठा हो जाता है । यह कैसी बात है । इतने जल का क्या होगा, तुम बता सकते हो ? ओः उस दिन, उस दिन मैं और वह, वह सब हमें क्या हो गया था तुम बता सकते हो ? हमारी देह को कुछ हो रहा था ।

ब्रह्मा—वह वर्षा थी । तुम दोनों सर्दी, ठंड से ठिठुर रहे थे । वह भी प्रकृति का स्वभाव है ।

स्त्री—फिर कहा स्वभाव। यह स्वभाव मत कहो मुझे कैसा मालूम होता है। क्या कहूँ ! भूल गई।

ब्रह्मा—बुरा ! जो मन को भला न लगे, उस जगह 'बुरा' कहना चाहिए।

स्त्री—ठीक हाँ, वही तो। पर यह तुमने क्या कहा प्रकृति !

ब्रह्मा—हाँ, प्रकृति। यह समुद्र, वर्षा, पहाड़, हिम, वृक्ष, लता, पत्ते, घास सब प्रकृति का ही रूप है।

स्त्री—हाँ, हाँ यह सब प्रकृति है। ठीक है सब प्रकृति है। हम भी प्रकृति हैं। वह भी प्रकृति है। मुझे क्या हो गया। यह समुद्र, वर्षा, पहाड़, हिम, वृक्ष, लता, पत्ते, घास से अधिक मुझे वह क्यों अच्छे लगते हैं। तुम बता सकते हो ? (**इतने में मृग आकर स्त्री के शरीर को चाटने लगता है**) यह अच्छा लगता है। (**हाथ फेर कर प्रसन्न होती हुई**) कितना सुन्दर, बहुत सुन्दर है। ओः कितना अच्छा है। कुछ बहुत अच्छा, कुछ बहुत बुरा। ऐसा क्यों है, तुम बता सकते हो ?

ब्रह्मा—यह संसार है। यहाँ सभी तरह की वस्तुएँ हैं। कौन वस्तु अच्छी है कौन बुरी ? यह देखने, जानने वाले की रुचि पर निर्भर है। जो पत्थर किसी के लगकर चोट पहुँचा सकता है वही गुफा बनाने के काम भी तो आता है। जिस जल में आदमी डूब जाते हैं वही सम्पूर्ण प्रकृति को जीवन देता है। जिस सूर्य के प्रकाश से तुम्हारी देह झुलस जाती है वही न हो तो संसार अन्धकारमय हो जाय और प्रकृति तथा मनुष्य का जीवन असम्भव हो जाय।

स्त्री—'असम्भव' बिल्कुल नया शब्द है। 'जीवन' यह क्या है ? इतने शब्द ?

ब्रह्मा—घास बढ़ती है ?

स्त्री—हाँ पिछले चार दिनों में इस शिला के पास की घास बहुत बढ़ गई है।

ब्रह्मा—तुमने देखा होगा यह वृक्ष भी बढ़ रहा है।

स्त्री—हाँ।

ब्रह्मा—क्या तुम कुछ समय पूर्व इतनी ही बड़ी थीं जितनी अब ?

स्त्री—(**अपने शरीर की ओर देखकर**) कुछ बढ़ी हूँ।

ब्रह्मा—तो 'बढ़ना' जीवन है, परन्तु तुम्हारे और वृक्षों के जीवन में अन्तर है। वृक्ष, लता बढ़ते हैं किन्तु मनुष्य का जीवन इसके अतिरिक्त कुछ और भी है। वह इच्छा करता है, किसी को बुरा समझता है, घृणा करता है, चाहता है, भय से बचने का यत्न करता है, सुख पाकर प्रसन्न होता है, दुख पाकर रो देता है; बस, यही उसका जीवन है। तुम्हारा भी जीवन है और उस नर का भी जो अभी बाहर गया है। मृग का भी जीवन है।

स्त्री—(**सोचती हुई**) यह जीवन है। हाँ, यह जीवन है।

ब्रह्मा—तू जीवन का महत्व समझ। यही मैं तुझे बताने आया हूँ।

स्त्री—जीवन का महत्त्व क्या है ?

ब्रह्मा—जीवन। जीवन को बनाए रखना। उसको बढ़ाना।

स्त्री—उसको बढ़ाना, यह तुम क्या कह रहे हो ? वह बढ़ाया किस तरह जा सकता है ? असम्भव।

ब्रह्मा—यह तुझे अभी ज्ञात होगा। देख उधर सामने (**देखती है नर कन्धे पर नीलगाय के बच्चे को लादे चला आ रहा है। उसका सिर लटक रहा है और लाकर नारी के सामने पटक देता है। स्त्री आश्चर्य, भय, उत्सुकता से उसकी तरफ़ देखती है**)।

स्त्री—यह क्या है यह तो वही नीलगाय है न ? नहीं यह वह नहीं है। अरे, इसे हो क्या गया ? यह तो उससे छोटा है, बहुत छोटा।

पुरुष—पहाड़ से गिर पड़ा! इसे कुछ हो गया है। ठहरो। (**दौड़कर दोनों हाथों में जल लाता है और उसके मुँह में डालता है। फिर भी उस**

में चेष्टा नहीं होती। नारी उसका सिर हिलाती है। मुँह खोलती है। खुर हिलाती है) इसे क्या हो गया ?

स्त्री--इसे वह हो गया जो पहले कभी नहीं हुआ था। यह क्या है ?

(दोनों के चेहरे पर भय और शोक के चिह्न छा जाते हैं)

ब्रह्मा—यह मृत्यु है।

दोनों—मृत्यु।

ब्रह्मा—हाँ, यह मृत्यु है।

पुरुष—अच्छा तुम हो।

स्त्री—मृत्यु (उसी चेष्टा में) यह तो बहुत बुरी है।

पुरुष—बहुत बुरी है। अच्छा ब्रह्मा, तुम बता सकते हो, क्या मेरी भी यही दशा होगी ?

ब्रह्मा—हाँ, एक दिन सबकी यही दशा होगी।

स्त्री—हैं हैं, ऐसा क्यों कहते हो, क्या मेरी भी ऐसी दशा होगी ?

ब्रह्मा—हाँ सबकी। परन्तु इसका उपाय है। जैसे जीवन से मृत्यु होती है वैसे ही जीवन से जीवन की उत्पत्ति होती है।

दोनों—'उत्पत्ति' नया शब्द है। उत्पत्ति क्या ?

ब्रह्मा—तुमने इस गाय को पहले देखा था ?

दोनों—नहीं, पर ऐसी ही एक हमारे पास खेलती थी।

ब्रह्मा—बस, यह उसी गाय की सन्तान है।

दोनों—सन्तान, (आश्चर्य से) एक और नई बात ! सन्तान क्या ?

ब्रह्मा—'बढ़ना'। दो से तीसरे की उत्पत्ति सन्तान कहलाती है।

स्त्री—(उत्सुकता से) तुम क्या पहेली सी कह रहे हो ?

पुरुष—'पहेली' यह कैसा शब्द है। यह तुमने कहाँ से सुना ?

स्त्री—यह मैंने अपने आप कहा है। न मालूम मेरे मुख से कैसे निकल

गया। ब्रह्मा, बताओ वह सन्तान कैसी होगी। मैं चाहती हूँ ऐसी गाय उत्पन्न कर सकूँ जिसके साथ सदा खेला करूँ।

ब्रह्मा—ऐसा नहीं हो सकता। तू अपने जैसी स्त्री या पुरुष ही उत्पन्न कर सकती है नीलगाय जैसी नहीं। अर्जुन की (**सामने वृक्ष की ओर संकेत करके**) सन्तान अर्जुन ही होगी। नीलगाय की सन्तान नीलगाय।

स्त्री—मैं सन्तान चाहती हूँ। जब यह बाहर चले जाते हैं, जब यह मुझ पर क्रोध करते हैं, पत्थर तान कर मारना चाहते हैं तब जो मेरी रक्षा कर सके, ऐसी सन्तान मैं चाहती हूँ। ब्रह्मा, मुझे उपाय बताओ।

पुरुष—मैं भी उत्पत्ति करना चाहता हूँ (**स्त्री की ओर संकेत करता हुआ**) यदि इसकी पहले मृत्यु हुई तो मैं एक नारी के साथ रहना चाहूँगा जो बाहर से थककर आने पर मेरी सेवा कर सके। मुझे जल पिला सके। जैसा सिंह से युद्ध करने पर एक बार इसने किया था। मैं युद्ध चाहता हूँ। खूब दौड़ना, भागना, मारना, काटना चाहता हूँ और चाहता हूँ मैं किसी से भी न हारूँ। जब मैं थक जाऊँ तब (**स्त्री की ओर संकेत करके**) ऐसी नारी चाहता हूँ। मैं भी उत्पत्ति करना चाहता हूँ। ब्रह्मा तुम मुझे कोई उपाय बताओ।

स्त्री—दौड़ना, भागना मैं नहीं चाहती। मैं एक जगह बैठी रहना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ उससे प्रेम करूँ, उस पर शासन करूँ जो मेरी रखवाली करे। मुझे सिंह से बचावे।

पुरुष—'प्रेम' नया शब्द है। तू ऐसा क्यों चाहती है। मैं तुझसे दब नहीं सकता। तेरे कहने के अनुसार नहीं चल सकता। मैं स्वतंत्र हूँ। ब्रह्मा, मैं ऐसी स्त्री नहीं चाहता जो मुझ पर शासन करे। मैं चाहूँ तो अभी पत्थर मारकर तुझे समाप्त कर दूँ। (**क्रोध से दाँत पीसने लगता है। स्त्री डर जाती है**)

स्त्री—(भीत सी) पर मैं ऐसा कहाँ चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ पर वैसा नहीं। ब्रह्मा बताओ, मैं कैसा चाहती हूँ ?

ब्रह्मा—प्रेम का शासन। कोमलता का शासन। देखो, लड़ो मत। क्रोध मत करो। जीवन केवल बढ़ना, घटना, इच्छा करना, घृणा करना ही नहीं है। वह प्रिय, अप्रिय का भी है। सुन्दरता, कुरूपता का भी है। कटुता, मधुरता का भी है। उसे सुखी बनाना भी जीवन का एक लक्ष्य है। वह अकेले अकेले नहीं हो सकता। स्त्री और पुरुष दोनों के संयुक्त शासन का नाम संसार है। पुरुष बाहर की प्रत्येक वस्तु का शासक है। पशु, पक्षी, लता, पौधे, वृक्ष, पृथ्वी, पहाड़, समुद्र का शासक है। स्त्री पुरुष के हृदय की शासक है। नारी का जीवन सौन्दर्य, दया, त्याग, करुणा, प्रेम है। उसके द्वारा वह पुरुष पर शासन करती है। उत्पत्ति उस जीवन को आगे बढ़ाने-वाली वस्तु है। वही उत्पत्ति तुम दोनों को जाननी है।

स्त्री—(प्रसन्नता से उछलकर) ब्रह्मा, तुम बड़े चतुर हो। तुमने मेरी बात कह दी। वही बात मैं कहना चाहती थी।

पुरुष—मैं स्वतंत्र हूँ। पर मुझे इस गाय की मृत्यु से भय हो गया है। मैं इस मृत्यु से कैसे छुटकारा पा सकता हूँ। इसका उपाय बताओ। ओः मृत्यु बड़ी भयंकर है। इसमें न तो कोई बात कर सकता है, न सुन ही सकता है।

स्त्री—ब्रह्मा, मैं उत्पत्ति चाहती हूँ। मुझे मृत्यु से भय लगता है। तुम बता सकते हो, यह मृत्यु है क्या ?

पुरुष—पागल, तू इतना भी नहीं जानती। मृत्यु कुछ भी नहीं, बस, मृत्यु है। थक जाने पर सो जाने की तरह। लाओ हम इसकी रक्षा करें। यह फिर उठ सकता है। क्यों ब्रह्मा ?

ब्रह्मा—नहीं, अब यह नहीं उठ सकता। इसके शरीर में बोलने, सुननेवाली

शक्ति, वह वस्तु नहीं रही। एक दिन तुम दोनों भी इसी तरह शक्तिहीन पड़े रहोगे।

पुरुष—(**मृग की तरफ़ ध्यान से देखता रहता है**) पर यह क्या, यह दुर्गन्ध कैसी है ?

स्त्री—हाँ, दुर्गन्ध (**नाक दबाती है जैसे भागना चाहती हो**)। यह इसी की दुर्गन्ध है। ओः इसे दूर करो, ले जाओ। मैं मृत्यु से बचने का प्रयत्न करूँगी। क्या मरने पर मेरे शरीर से भी इसी प्रकार की दुर्गन्ध उठेगी ? (**भय होता है**)।

पुरुष—ब्रह्मा, क्या मेरे शरीर से भी ऐसी ही दुर्गन्ध उठेगी ? (**काँपता है**)।

ब्रह्मा—इसका शरीर सड़ने लगा है। इसका जीवन समाप्त हो गया है। तुम लोग जीवन की रक्षा के लिए उसे स्थिर रखने के लिये ही उत्पन्न हुए हो। आओ, मैं तुम्हें उत्पत्ति का उपाय बताऊँ। (**नर से**) तुम इस शव को ले जाकर दूर फेंक आओ।

स्त्री–(**आश्चर्य से**) क्या कहा शव। एक और नया शब्द। मैं डर गई हूँ। मैं जीवन चाहती हूँ। क्या सदा जीवित नहीं रह सकती ? (**नर गाय का शव उठाकर ले जाता है**) ब्रह्मा, मैं जीवन चाहती हूँ। मैं क्यों न जी सकूँगी, मुझे कौन मारेगा ? क्या कोई पहाड़ से न गिरे तब भी मर जायगा ? मैं जीवन चाहती हूँ ब्रह्मा ?

ब्रह्मा—मैंने तुमसे पहले ही कहा है कि कोई भी प्राणी सदा जीवित नहीं रह सकता। परन्तु जीवन का क्रम बराबर बनाये रखा जा सकता है। स्त्री में वह शक्ति है जिसके द्वारा वह जीवन को स्थिर रख सकती है। जब वह अपने जैसी अनेक सन्तान, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री उत्पन्न कर लेती है तभी उसके जीवन का ध्येय पूरा हो जाता है।

स्त्री—परन्तु उस शरीर से एक और प्राणी कैसे हो सकेगा, असम्भव ?

ब्रह्मा—हाँ, शरीर से ही शरीर की उत्पत्ति होती है।

स्त्री—(**आश्चर्य से**) कैसे ?

ब्रह्मा—देखो नारी, भय की कोई बात नहीं। तुम जानती हो मैं ब्रह्मा हूँ। मैंने ही तुम दोनों को उत्पन्न किया है। सहस्रों वर्ष तप करने के बाद मुझमें इतनी शक्ति हुई है कि मैं तुम दोनों को उत्पन्न कर सका हूँ। मैं चाहता हूँ, तुम दोनों मिलकर संसार उत्पन्न कर सको जिससे पुरुष और स्त्री के नाश का क्रम न टूटे।

स्त्री—परन्तु इस उत्पत्ति से मुझे क्या लाभ होगा ? मैं नहीं चाहती कि ऐसा पुरुष हो जो मुझ पर क्रोध करता रहे और मुझ जैसी स्त्री हो जिसे बहका कर वह ले जावे। नहीं ब्रह्मा, मैं उत्पत्ति नहीं चाहती।

ब्रह्मा—ऐसा नहीं हो सकता। जब तुम दोनों निर्बल हो जाओगे तब तुम्हारे सन्तान तुम्हारी सेवा करेगी। पुत्र तुम्हारी लिये भोजन लावेगा, कन्या तुम्हारी सहायता करेगी। इसके अतिरिक्त संसार को स्थिर रखने के लिये यह आवश्यक है कि तुम दोनों मिलकर नया जीवन उत्पन्न करो।

स्त्री—दोनों मिलकर, यह कैसे हो सकता है ? नहीं, मैं सन्तान नहीं चाहती।

(**पुरुष का प्रवेश**)

पुरुष—(**ब्रह्मा को बातें करते देखकर**) फिर वही, हर समय वही। उत्पत्ति, उत्पत्ति, (**क्रोध में आकर ब्रह्मा से**) मैं उत्पत्ति नहीं चाहता। उस दिन भी तुमने कहा था, उत्पत्ति करो। (**स्त्री से**) देखो, उत्पत्ति का नाम न लेना। (**मारने झपटता है, नारी पीछे हटती है**)।

स्त्री—(**डरकर**) क्या कर रहे हो ? क्या कर रहे हो ?

ब्रह्मा—(**तीव्र स्वर में**) ठहरो, क्या करते हो ?

पुरुष—(**क्रोध से**) तुम मुझे दिखाई नहीं देते, नहीं तो....(**क्रोध से मुट्ठी ताने ब्रह्मा के स्वर की ओर देखता है**)।

ब्रह्मा—(**अट्टहास करके**) मार देते क्यों ? हा हा हा हा ! हा हा हा हा ?

पुरुष—(**क्रोध में भरा हुआ उसके हँसने से मिसमिसाकर**) हैं हैं यह क्या ! तुम (**फिर क्रोध से**) क्यों इसे .....। क्या कहूँ......?

ब्रह्मा—मैं बहकाता हूँ इसे ! नहीं, मैं नहीं बहकाता; मैं साधन हूँ।

स्त्री—'बहकाता' एक नया शब्द है। साधन कैसा ?

पुरुष--साधन, किस बात का साधन ?

ब्रह्मा—तुम दोनों को मिलाने का ? तुम दोनों एक हो जाओ, एक दूसरे से प्रेम करो तो...... ।

स्त्री—ठहरो, ठहरो प्रेम क्या ?

पुरुष—हाँ, यह तो नई बात है।

ब्रह्मा—यदि तुम मिलकर रहो तो कोई भी तुमको डरा नहीं सकता। तुम संसार पर विजय पा सकते हो।

स्त्री—(**आश्चर्य से**) अर्थात् ?

पुरुष—(**क्रोध से**) अर्थात् ?

ब्रह्मा—तुम जो चाहो कर सकते हो। तुम्हारी संतान के सामने यह सिंह, छिपकली, हाथी सब दब जायँगे।

पुरुष—(**क्रोध से**) परन्तु उससे मुझे क्या ? मेरा क्या लाभ है ? नहीं, मैं ऐसे ही रहना चाहता हूँ। मुझे ऐसे ही रहने दो। मैं इस नारी को नहीं चाहता। मैं किसी को नहीं चाहता। मैं किसी से नहीं डरता।

ब्रह्मा—(**तीव्र स्वर में**) तुमने वह मृत्यु देखी, तुम्हारी भी वही दशा होगी। उस समय तुम क्या करोगे ?

पुरुष—(**उसी भाव से**) कुछ नहीं, मर जाऊँगा।

स्त्री—(**निहोरे के ढंग से**) नहीं, ऐसा न कहो, ऐसा न कहो। हमें कोई उपाय सोचना चाहिये। आओ, हम मिलकर कोई उपाय सोचें। (**हाथ**

पकड़ती है) ब्रह्मा, हमें ठीक-ठीक बताओ। (नर की ओर देखती हुई) न जाने तुम्हें देखकर मुझे कैसा होता है ?

(इसी समय दोनों देखते हैं कि वह भूभाग एकदम बदलता जा रहा है, वहाँ बहुत-से फूल खिल गये हैं। मीठी-मीठी गरम हवा चलने लगी है। बहुत-से पशु-पक्षी वहाँ न जाने कहाँ से चले आ रहे हैं। जोड़े के जोड़े एक-दूसरे से प्यार करने लगे हैं, जैसे सब कुछ बदल गया है। ऊपर, नीचे सभी जगह एक तरह की मस्ती-सी छा गई है। दोनों के शरीर में सिहरन होने लगती है। इतने पक्षी और पशुओं के होते हुए भी न कोई किसी को मारता है, न कोई किसी से कुछ कहता है। सब कुछ मानों बदल रहा है।

क्रोध, हिंसा तो मानों कहीं भी नहीं है। दोनों आश्चर्य से यह दृश्य देखते रहते हैं। बिलकुल नया है यह सब उनके लिए। ऐसा कभी न देखा था। अन्त में नारी नर के शरीर पर हाथ रख देती है, नर भी नारी के शरीर पर हाथ रखता है, फिर देखते हैं खरगोशों की एक लम्बी कतार दौड़ी चली आ रही है। बड़े सुन्दर, वे आकर एक दूसरे को प्यार करते हैं, चूमते हैं, चाटते हैं)।

पुरुष—(आश्चर्य से) यह क्या है, अरे, यह क्या होगया ? (स्त्री की ओर हँसकर) यह क्या हो रहा है ? इतना सुन्दर ?

स्त्री—सुन्दर, सचमुच सुन्दर। (फूल सूँघती हुई) यह फूल, कितना मीठा ?

पुरुष—'सुगन्धित' कहो।

स्त्री—हाँ, सुगन्धित। बड़ा सुन्दर। बड़ा सुगन्धित, यह झरना कितना......। क्या कहूँ। आहा, ऐसा कभी न देखा था।

पुरुष—सचमुच सचमुच।

(पुरुष प्रसन्नता से उठकर कूदने लगता है। कुलाँचे मारता है। स्त्री उसको

देखकर पहले धीरे धीरे मुँह फाड़कर हवा खाती हुई घूमती है। फूल तोड़कर सूँघती है। पुरुष को उसे सुँघाती है, किन्तु पुरुष कुलाँचे लगाता रहता है। अंत में उसे पकड़कर फूल सुँघाती है। पुरुष उस पुष्प की सुगन्धि से प्रसन्न होता है। फिर हा हा हा हा करके छलाँगों का क्रम बदल कर कूदने लगता है। स्त्री को साथ ले लेने के कारण उसकी गति धीमी हो जाती है और वे दोनों मन्द गति से कूदने लगते हैं। मानों उन्हें प्रसन्नता प्रकट करने का और कोई साधन नहीं है। फिर बैठ जाते हैं। इसी समय हरिण हरिणी के जोड़े के साथ उनका एक बच्चा कूदता वहाँ आ जाता है)।

स्त्री—अरे, यह क्या, देखा तुमने ?

पुरुष—(गाता हुआ) रहने दो, मैं नहीं देखना चाहता। आओ कूदें।

स्त्री—नहीं बैठो। देखो। यह छोटे हरिण की उत्पत्ति शरीर से शरीर की है।

पुरुष—आश्चर्य ?

स्त्री—न जाने यह क्या हो रहा है। मेरे हृदय में भी जैसे कुछ हो रहा है। एक गुलगुली-सी हो रही है। मेरे शरीर में कुछ हो रहा है।

पुरुष—मैं तो आनन्द में बेसुध हुआ जा रहा हूँ। (दोनों एक-दूसरे के पास सरक कर सट कर बैठ जाते हैं।) वह तुमने उस गिलहरी को देखा ?

स्त्री—(उसी भाव से) हाँ, देख तो रही हूँ।

पुरुष—(देखता रहता है।)

स्त्री—वह गाय, देखो कैसे एक-दूसरे को चाट रही हैं ?

पुरुष—(उसी भाव से) हाँ, यह सब क्या है ?

स्त्री—(नर के शरीर से लिपटकर) यही जीवन का सुख है। ओह, कितना महान्। मुझे रोमांच हो रहा है। (आनंद-विभोर होकर नर के शरीर पर हाथ फेरती है। नर वैसे ही ध्यान में मग्न रहता है फिर एकाएक दोनों एक-दूसरे को देखने लगते हैं, आँखें गड़ाये देखते रहते हैं। दोनों

उठकर खड़े हो जाते हैं। फिर भी एक-दूसरे को देखते रहते हैं। एकदम अन्धकार छा जाता है)

स्त्री—एक आवाज़ आती है। ब्रह्मा यही हमें दिखाना चाहते थे, यही बताना चाहते थे।

पुरुष—(उसी स्वर में) हाँ।

स्त्री—आओ हम उत्पत्ति करें।

पुरुष—हाँ।

स्त्री—क्या नर और नारी के जीवन की यही सार्थकता है ?

पुरुष—उत्पत्ति ही जीवन है।

स्त्री—क्या उत्पत्ति ही जीवन है ?

पुरुष—हाँ, उत्पत्ति ही जीवन है।

स्त्री—मैं सब कुछ भूली जा रही हूँ। सब ओर आनन्द का समुद्र लहरा रहा है।

पुरुष—मैं भी सब कुछ भूल गया हूँ। बेसुध, विभोर हुआ जा रहा हूँ।

दोनों—जीवन। जीवन की मुक्ति।

दोनों—हाँ।

(धीरे धीरे प्रकाश होता है। देखते हैं लताओं, वृक्षों में फूलों के गुच्छे लटकने लगे हैं। कुछ वृक्षों में फल भी निकल आये हैं। दोनों प्राणी इतने प्रसन्न हैं मानों नया संसार नई आँखों से देख रहे हों। दोनों के मुखों पर अलौकिक प्रकाश की आभा छिटकने लगी है। दोनों एक दूसरे के कंधों पर हाथ रखे बैठे हैं और पृथ्वी का सौन्दर्य देखकर रहे हैं।)

स्त्री—(पुरुष की ओर ध्यान से देखर) क्या देख रहे हो ?

पुरुष—(स्त्री का मुख अपनी ओर फेरकर) देख रहा हूँ, क्या जीवन यहाँ से प्रारंभ होता है ?

तीसरा दृश्य

(बहुत समय बाद)

[पहाड़ का वही भाग, शिलाखण्ड के पत्थर काटकर कुछ ठीक कर दिये गये हैं। उसके आगे का भाग पहले की अपेक्षा कुछ साफ-सुथरा देख पड़ता है। थोड़ी दूर पर हरिण का जोड़ा आँखें बन्द किये रोमन्थ कर रहा है। हरिणी का मुँह हरिण की गर्दन पर लटका है। उसके पास ही एक बच्चा छोटा सा कुछ घास बिछाकर उस पर लिटा दिया गया है। जो पड़ा-पड़ा आसमान की ओर देख रहा है। सब ओर सुनसान है। इतने में एक ओर से गुर्राने की आवाज़ सुनाई पड़ती है। हरिणी सिर उठाकर उस ओर आँखें फाड़कर देखने लगती है। हरिण उठकर खड़ा हो जाता है। बच्चा वैसे ही पड़ा है। कोलाहल का उस पर केवल इतना प्रभाव पड़ा है कि ज़रा मुँह बनाकर रोने की चेष्टा करता है और एकाध क्षीण स्वर निकाल भी देता है। इसी बीच एक सिंह चुपके से झपटकर हरिणी को दबोच लेता है। हरिण भाग जाता है। वृक्ष पर बैठे पक्षी चहचहाने लगते हैं और जोर जोर से कौए बोलने लगते हैं मानों उन्हें भी भय हो रहा है। 'चीं चीं' 'काँय काँय' की उग्रता बढ़ती जाती है। एक ओर से सूखी लौकी के बने हुए बर्तन में पिछले दृश्य में दिखाई गई स्त्री पानी लिये जल्दी जल्दी चली आ रही है। उसका नामकरण हो गया है—शतरूपा। सिंह को मृगी को दबाए हुए देखकर पानी का बर्तन वहीं रखकर चिल्लाती है और बच्चे की ओर झपटती है फिर रुक जाती है। फिर आगे बढ़ती है। सिंह उस स्त्री की ओर देखकर पहले धीरे-धीरे गुर्राता है, फिर दहाड़ता है। मृगी को एक पंजे से दबाकर खड़ा हो जाता है और जोर जोर से दहाड़ने लगता है। बच्चा रोने लगता है। स्त्री बच्चे को एकदम उठाकर छाती से चिपटा लेती है। वह चेष्टा करती है हाथ उठाकर कि सिंह को

भगा सके, पर सिंह चुपचाप मृगी के पेट पर दोनों पंजे जमाकर बैठ जाता है और शिकार से खेल-सा करने लगता है। मानों स्त्री के चीत्कार का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। फिर एकदम मृगी को मुँह में दबाये घसीटता हुआ ओझल हो जाता है। स्त्री बच्चे को उसी भाग में, जहाँ बच्चा घास पर पहले सो रहा था लिटाकर 'मनु मनु' करके चिल्लाने लगती है। मनु एक हाथ में पत्थर का लम्बा-सा खाँडा लिए आता है। इस समय मनु छाल के कपड़े पहने है जो लकड़ी के टुकड़ों की छोटी छोटी सींकों से बँधे हुए हैं। बाल पीछे को ओर लटकते हुए, जो बीच में छाल से बाँध दिये गये हैं। स्त्री का भी यही वेश है।]

स्वायंभुव मनु—(कंधे पर खाँडा रखे हुए आता हुआ) क्या है शतरूपा, क्या बात है ?

शतरूपा—(जो अभी तक कुछ कुछ भयभीत और शोकातुर है) क्या अब भी नहीं देखा ?

स्वा० मनु—(भूमि पर रुधिर की धार पड़ी और फैली हुई देखकर निडर भाव से) देख तो रहा हूँ। सिंह था कदाचित्। (सामने देखकर) मृगी को ले गया ?

शतरूपा—उसके पेट में बच्चा था। (आँखों में आँसू भरकर) तुमने सुना क्यों नहीं। मैं कुछ भी न कर सकी। (ध्यान आते ही) यदि इसको (बच्चे को) उठा ले जाता तब। तुम सुनते नहीं हो।

स्वा० मनु—मैं दूर था। कोलाहल सुनकर ही तो चल पड़ा। अच्छी मृगी थी। सब कहाँ हैं ?

शतरूपा—(उसी भाव से) मैं क्या जानूँ।

स्वा० मनु—यह ठीक नहीं है। मैं दिन भर खेत में काम करूँ और वे सब घूमते रहें, यह तो अच्छा नहीं है शतरूपा ?

शतरूपा—(कुछ भी नहीं बोलती)।

स्वा० मनु—यह ठीक नहीं है। हमको उद्योग करना चाहिये। अरे, तुम अभी तक डरी हुई हो। डरने की क्या बात है? जो हो गया सो ठीक है।

शतरूपा—डरूँ क्यों न? वह प्यारी मृगी आज मार डाली गई। सिंह उसको उठाकर ले गया। क्या यह डर की बात नहीं है? मेरा मन काँप रहा है। मनु मैं देखती हूँ, आज सिंह उसे ले गया, कल को यदि मेरे बच्चों को उठाकर ले गया तब मैं क्या करूँगी?

स्वा० मनु—क्या करना है यह मैं नहीं जानता, पर तुम इतना भय क्यों करती हो। जब वैसा होगा तब देखा जायगा।

शतरूपा—नहीं मनु, यों न चलेगा। हम इस तरह ठीक नहीं रह सकते। तुम कोई प्रबन्ध अवश्य करो। मेरा मन न जाने कैसा हो रहा है। मैंने जो कुछ किया है वह इसलिये नहीं कि उन्हें कोई मार डाले, उठा ले जाय। तुम्हें कुछ करना होगा मनु?

स्वा० मनु—(जो किसी चिन्ता में एक ओर को ध्यान से देख रहा है) हूँ।

शतरूपा—(मनु के कन्धे पर हाथ रखकर) बोलो, तुम इसका प्रबन्ध करोगे?

स्वा० मनु—(उसी ध्यान में) हाँ, मैं उस सिंह को मार डालूँगा। (शतरूपा की ओर देखकर) मैं उसे मार डालूँगा प्रिये!

शतरूपा—(सोचती हुई) तुम क्या सोच रहे हो यह मनु, तुम क्या सोचा करते हो! मैं देखती हूँ तुम कभी-कभी कुछ उदास हो जाते हो। कभी अपने आप हँसने भी लगते हो। न उसी तरह बोलते हो। तुम्हें क्या हो गया?

स्वा० मनु—मैं सोचता हूँ यह क्या हो रहा है। क्या होता जा रहा है। मैं पहले से बहुत जान गया हूँ। न मालूम इस संसार में क्यों बहुत ज्ञान है। जितना मैं सोचता हूँ उतना मुझे सब अधिक अधिक जान पड़ता है।

मैं सोचता हूँ इतने ज्ञान का क्या होगा। यह क्या हमारे सुख के लिये होगा ?

शतरूपा—तुम व्यर्थ इतना सोचते हो। मैं तो कुछ भी नहीं सोचती। मैं तो सोच भी नहीं पाती। (**गोद में लिये बच्चे को प्यार से देखकर**) मैं इसको देखती रहती हूँ, बच्चों को देखती रहती हूँ। मुझे ऐसा देखना, देखते रहना भला लगता है। मैं चाहती हूँ सब खूब हँसें, खूब घूमें। प्यार करें एक दूसरे को। और इसी तरह से होता रहे। तुम सोचना छोड़ दो। उस मृगी की मुझे याद आ रही है। (**आँखें पोंछ लेती है**)।

स्वा० मनु—नहीं शतरूपा, यह सब ऐसा ही नहीं रहेगा। मैं देखता हूँ ये बालक बड़े हो गये हैं। आपस में लड़ रहे हैं। एक दूसरे को मार रहे हैं। बहुत बढ़ गये हैं। इन्हें जैसे कोई रोकनेवाला नहीं है। लड़ रहे हैं। कभी-कभी देखता हूँ हम बूढ़े हो गये हैं। हमारे हाथ-पैरों में बल नहीं रहा है। हमारी सब शक्ति क्षीण हो गई है। सर्दी हमें उठने नहीं देती। वायु हमें बुरी लगती है। गरमी हमें सताती है। वर्षा के पानी में हम भीग रहे हैं। परन्तु ये लड़के लड़ रहे हैं। झोपड़ी के लिये। कहीं से बहुत-सी स्त्रियाँ आ गई हैं। बस, उन्हीं के पीछे लड़ाई हो रही है। मेरे कुछ बालक, जो उस समय खूब बड़े हो गये हैं, मरे पड़े हैं। यह कैसा जीवन है। बस, मैं यही सोचता रहता हूँ।

शतरूपा—(**सोचकर**) तुम जैसा सोचते हो वैसा नहीं हो सकेगा। मेरे बच्चे आपस में लड़ेंगे, मैं तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकती। वे क्यों लड़ेंगे, उन्हें किस बात की कमी है। वे कभी लड़ नहीं सकते। हमें जो यह मिला है जीवन, वह ऐसी बातें सोचने के लिये नहीं है। हम अभी बहुत दिन तक जियेंगे।

स्वा० मनु—कदाचित्, कदाचित् ऐसा न हो, पर मुझे जैसे यह सब होता

देख पड़ता है। खेत निराते-निराते मैं जब थक-सा जाता हूँ तब नीले आकाश के नीचे, ठंडी-ठंडी वायु में मुझे ऐसा लगता है मानों मैं यह सब क्यों कर रहा हूँ। हमें यह जो जीवन मिला है उसके पीछे क्या इतना झंझट है। भूख, प्यास, नींद न जाने क्या-क्या। यह सब क्या है? उस दिन तुम नहीं थीं, झरने पर नहाने गई थीं या न जाने कहाँ? मैंने देखा एक चमरी गाय बीमार-सी आकर उस सामने के वृक्ष के नीचे पड़ी है। बहुत दुखी है, मुँह से झाग निकल रहा है। आँखें बन्द हैं और एक दूसरी गाय ने आकर उसको सूँघा, उससे अपना सिर रगड़ा। एक और गाय आई। उसे आते देख कर सिर रगड़ने-वाली गाय ने उससे लड़ना प्रारम्भ कर दिया। यहाँ तक कि दोनों लड़ते-लड़ते लोहू-लुहान हो गयीं। यही देखकर मैंने सोचा कि जहाँ बहुत होते हैं वहाँ लड़ाई होती है। उन्हें किस बात की कमी थी, फिर भी गायें आपस में लड़ मरीं। तब से मुझे चिन्ता है और मैं सोचता हूँ कि कहीं एक दिन हमें भी ऐसा न देखना पड़े?

शतरूपा—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। वे मूर्ख हैं और हम बुद्धिमान्। हम बोलते हैं वे बोल नहीं सकते। हमने जब से बोलना सीखा है तब से ऐसा लगता है मानों कोई बात हमें कहने को नहीं रही है। हृदय में जो बात उठती है वह धुएँ की तरह बाहर निकल आती है। कोई बात ही नहीं है। केवल एक ही बात है वह है प्रेम। न जाने क्यों वही मुझे बहुत अच्छा लगता है। कभी-कभी मेरे हृदय में आँधी-सी उठती है। मैं अपने को सँभाल नहीं पाती। उस समय मुझे तुम्हारी याद आती है। इन बच्चों की याद आती है। उस मृगी की (**जो अब सिंह द्वारा मार डाली गई है**) याद आती है। उस गाय की याद आती है। मैं उन्हें दौड़ दौड़ चूम लेती हूँ। और...(**एक मनुष्य का प्रवेश। पत्थर का एक एक खाँड़ा**

कन्धे पर रखे हुए क्रोध से भौंहें तनी हुईं। ऊपर शरीर पर मृग की खाल ओढ़े हुए। कटि-भाग में छाल लपेटे हुए। शरीर में चोट के दाग़, शरीर रुधिर से सना हुआ आते ही आँगन में खाँड़ा ज़ोर से पटक कर खड़ा हो जाता है। दोनों हैरान-से उसकी ओर देखते रह जाते हैं)।

उत्तानपाद—देखो माँ, अपने लड़के को समझा लो। मैं अधिक सहन नहीं कर सकता। बहुत हो गई। (**क्रोध से हाँपता है**)।

शतरूपा—(**आगे बढ़कर**) क्या हुआ पुत्र, क्या हुआ ? प्रियव्रत कहाँ है ? उसे तुम कहाँ छोड़ आये ? अरे, तेरे शरीर में रुधिर के ये धब्बे कैसे ? हैं यह चोट, यह क्या बात है उत्तानपाद ?

स्वा० मनु—(**उपेक्षा के भाव से**) लड़ पड़े होंगे। मैं बहुत दिनों से यही तो देख रहा हूँ। इसीलिये मैं खेत जोतते, निराते, अनाज काटते, साफ़ करते थक जाता हूँ। इन लड़कों को कुछ सूझता ही नहीं।

उत्तानपाद—(**जो अभी तक हाँप रहा था**) आप पिताजी, कोई नियम बनाइये। मैं इस तरह नहीं रह सकता। आज उसने मेरी मृगया पर हाथ डाला और मुझसे युद्ध करने पर उतारू हो गया। मैंने बहुत रोका और चाहा कि वह मेरी मृगया न छुए। जब मैंने मृग को मारा तब उसका क्या अधिकार था। उस पर वह अपना अधिकार किस तरह कर सकता है ?

शतरूपा—प्रियव्रत है कहाँ ? वह बड़ा है। तुम्हें उस पर क्रोध न करना चाहिये बेटा !

प्रियव्रत—बड़ा होने से क्या ? उसे दूसरे की वस्तु पर अधिकार करना चाहिए था ? मैं अब इस घर में न रह सकूँगा। या तो वही यहाँ रहेगा या फिर मैं। (**प्रियव्रत का भी उसी ढंग से प्रवेश**)।

उत्तानपाद—तुम यदि घर में मेरे साथ नहीं रह सकते तो मैं तुम्हारे साथ कब

रहना चाहता हूँ। तुमने मेरा कुछ भी ध्यान नहीं किया। मैंने निश्चय किया है, मैं तुम्हारी छुई हुई मृगया को ग्रहण न करूँगा।

स्वा० मनु--देखो, न मृगया तुम्हारी है न प्रियव्रत की। यह तो प्रकृति की एक वस्तु है जिस पर सबका समान अधिकार है। लड़ना पाप है।

शतरूपा—पाप, यह नया शब्द है। यह पाप कैसे हो सकता है मनु!

उत्तानपाद—पाप, पुण्य मैं नहीं जानता। मैं तो एक बात जानता हूँ जीवन। जीवन जिस तरह से प्रसन्न हो, मन की इच्छा जिस तरह पूरी हो, वही करना चाहिये।

शतरूपा—पाप, पुण्य अनोखे शब्द हैं। तुमने यह 'पुण्य' शब्द कहाँ से जाना?

उत्तानपाद—कहीं से भी नहीं। वैसे ही मुँह से निकल गया। मैं तो इतना जानता हूँ कि हम मनुष्य हैं। हमारा प्रकृति की प्रत्येक वस्तु पर अधिकार है।

प्रियव्रत—ठीक है जैसे तुम्हारा अधिकार है वैसे ही दूसरे का भी। इस अधिकार का निर्णय कैसे हो फिर?

उत्तानपाद—युद्ध से। बल-प्रदर्शन द्वारा। जो बली होगा वही जीतेगा। उसी का अधिकार रह सकता है।

शतरूपा—यह तो ठीक है। वह सिंह बलवान् था इसीलिये हरिणी को पकड़ कर ले गया। यदि मैं उससे बलवान् होती तो उसे मारकर भगा सकती थी। उससे अपनी प्यारी मृगी को छीन सकती थी। परंतु क्या यह अच्छा मालूम होता है कि तुम लोग आपस में लड़ो? मैं डरती हूँ। तुम लड़ो मत। मेरे पास जो कुछ है तुम ले लो पर लड़ो मत। और भी तो मृगया है कोई एक तो है नहीं जिसके लिये तुम्हें लड़ने की आवश्यकता हो।

उत्तानपाद—यह नहीं हो सकता माँ! यदि यही बात हो तो हमारा बली

होना व्यर्थ है। हम पुरुष हैं। पुरुष का काम बली होना है। बल द्वारा सब पर शासन करना है। जो शासन नहीं कर सकते वे निर्बल हैं। उन्हें चाहिये कि बली की आज्ञा स्वीकार करें।

स्वा० मनु—आपस में लड़ना, मरना ही तो बल-प्रदर्शन नहीं है। दूसरों की सहायता करना भी बल का काम है। मैंने मरने, मारने, युद्ध करने के लिये तुमको नहीं उत्पन्न किया है। जीवन का लक्षण जीवन को बढ़ाना है मारना नहीं। आग से आग पैदा होती है, वृक्ष से वृक्ष। पशु से पशु। तुम लड़कर जीवन को नहीं बढ़ा सकते।

उत्तानपाद—यह ठीक है। हम जब उत्पन्न हुए हैं तब हम अपने साथ आवश्यकता लेकर ही उत्पन्न हुए हैं—भूख, प्यास, नींद, इच्छा। यदि इनमें किसी प्रकार का विघ्न होगा तो मनुष्य उसको प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करेगा। जो वस्तु उस मार्ग में विघ्न रूप से खड़ी होगी, उसे दबाकर नष्ट कर डालना होगा। उसी का नाम युद्ध है। जैसे जीवन का स्वभाव इच्छा है, उसी प्रकार युद्ध भी स्वभाव है जीवन का।

स्वा० मनु—परन्तु जीवन तो मेरा भी है। मुझे युद्ध की आवश्यकता नहीं हुई। अपने हाथ से खेत जोत कर अनाज उत्पन्न करता हूँ। तुम्हारा, तुम्हारे भाई का, तुम्हारी इस माँ का पेट पालता हूँ। मुझे तो कहीं भी युद्ध की आवश्यकता नहीं हुई। युद्ध को मैं पैशाचिक वृत्ति कहता हूँ। यह मनुष्य का नहीं पशुओं का काम है।

उत्तानपाद—पिताजी, तुम अकेले हो। यदि इसी खेत के और अधिकारी हो गये अर्थात् तुम्हारे मरने के बाद उसी खेत के सन्तान के अनुसार विभाग होंगे उस समय जो वस्तु तुम्हारे लिये बहुत थी सन्तान के निर्वाह के लिये थोड़ी हो जायगी। फिर निर्वाह के लिये कुछ न कुछ तो करना ही होगा। या तो किसी की भूमि लेकर दबानी

होगी या फिर भूखों मरना होगा। उस अवस्था में जीवन को स्थिर रखने के लिये एक ही बात है—युद्ध।

प्रियव्रत—मैं तो ऐसा जीवन नहीं चाहता। मैं युद्ध से घृणा करता हूँ। मैंने बड़े भाई होने के कारण मृगया पर अधिकार करना चाहा तो तुम युद्ध करने पर उतारू हो गये। इसी से मैंने कहा, मैं तुम्हारी मृगया को न लूँगा। तुम समझते हो युद्ध ही जीवन है पर बात ऐसी नहीं है। यदि इसी प्रकार युद्ध होता रहे तो संसार में एक भी मनुष्य जीवित न रहेगा। सब एक दूसरे को मार डालेंगे।

उत्तानपाद—मार डालेंगे तो मार डालें। इसीलिये मैं कहता हूँ सदा बलवान बनो।

शतरूपा—तुम लोग न जाने इतनी बातें कहाँ सीख गये हो। क्या सृष्टि का यही अर्थ है कि लोग आपस में लड़मरें ? नहीं, जीवन का यह उद्देश्य कदापि नहीं हैं। ब्रह्मा ने ऐसा कभी नहीं कहा। जैसे मैं और मनु परस्पर प्रेम से रहते हैं वैसे ही तुम भी प्रेम से रह सकते हो। एक दूसरे की भूख, प्यास, नींद का ध्यान रखो। दूसरे को सुखी रखने का ध्यान रखो तो दूसरा तुम्हें सुखी रखेगा। अपनी जान देकर तुम्हें सुखी रखेगा। मैं कह नहीं पाती, मनु की अवस्था तनिक भी खराब होते ही कैसी बेचैन हो जाती हूँ। ऐसा लगता है क्या करूँ। यदि मैं मनु के लिये प्राण देकर भी उन्हें सुखी कर सकूँ तो उसमें मुझे तनिक भी संकोच न होगा। तुम्हें नहीं मालूम मैंने तुम्हारे लिये कितना कष्ट सहा है। स्वयं कई बार इच्छा न होते भी, शरीर स्वस्थ न होते भी सर्दी में अपनी छाल उतार कर तुम्हें गर्म रखने का प्रयत्न किया है। गर्मी में धूप से बचाकर छाया में रखा है। स्वयं न खाकर तुम्हें खिलाया है। परन्तु मुझे इसमें आनंद मिलता रहा है। मैं तो इसको ही जीवन समझती हूँ।

उत्तानपाद--तो मेरा तुम्हारा निर्वाह नहीं हो सकता। मैं इसे कायरता, डर समझता हूँ। मैं चाहता हूँ बलवान बनूँ। सब पर शासन करूँ। मैं जाता हूँ जैसे मरीचि गया है वैसे ही मैं भी अपना नया स्थान बनाऊँगा और देखूँगा कि इस जीवन में मैं क्या कर सकता हूँ। अच्छा माँ, जाता हूँ। (**एकदम खाँडा उठाकर चला जाता है**)।

शतरूपा—चला गया ! (**दौड़ती हुई**) बेटा सुन तो। अरे सुन, (**पुत्र बढ़ता चला जाता है। यहाँ तक कि वह आँखों से ओझल हो जाता है। शतरूपा पुकारकर थक जाती है। फिर लौटकर गिर पड़ती है। मनु उसके पास जाकर उसे उठाते हैं। वह आँखें फाड़कर पति की ओर देखती रहती है। फिर एकदम रोने लगती है। मनु समझाते हैं। पर वह रोती ही जाती है**)।

स्वा० मनु—तुम व्यर्थ रोती हो शतरूपा। जो चला गया सो चला गया। जब वह स्वयं तुम्हारे पास नहीं रहना चाहता तो व्यर्थ की चिन्ता और रोने धोने से लाभ !

शतरूपा—तो क्या मैंने सृष्टि इसी लिये उत्पन्न की थी कि सन्तान पिता का अनादर करके, माता की अवज्ञा करके, बड़े भाई का तिरस्कार करके चली जाय। एक चला गया, मैंने समझा जाने दो और तो हैं। परन्तु यह भी एक एक करके सब न जाने कहाँ चले जाते हैं। हाय मनु, मैं क्या करूँ ? (**रोती है**)।

प्रियव्रत—माता घबराओ मत, हम सब तुम्हारी सेवा करेंगे। यह मेरा छोटा भाई जो है।

शतरूपा—बेटा, तुम नहीं जानते। मेरा हृदय कैसा हो रहा है। मनु, मैं सभी फूलों को एक सा प्यार करती हूँ। मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। मनु, मैं क्या करूँ। क्या सृष्टि इतनी निःस्नेह है, क्या उत्पत्ति का यही अर्थ है ! हाय, ब्रह्मा ने मुझे धोखा दिया।

स्वा० मनु—तुमने काँटों को फूल समझा है इसलिये तुम्हें कष्ट हो रहा है। जो अन्न हम खाते हैं, उसका कुछ अंश शरीर का रस बनता है, रुधिर बनता है यहाँ तक कि शरीर का परम रूप 'बल' बन जाता है, परन्तु उसके साथ ही कुछ भाग ऐसा होता है जिसे हम बाहर निकालकर फेंक देते हैं। इसी तरह जो बुरा है वह अपने आप निकल गया।

शतरूपा—मनु, मुझे तुम्हारी बातों से कोई संतोष नहीं होता। मैं देखती हूँ मेरा सारा जीवन व्यर्थ हो रहा है।

स्वा० मनु—व्यर्थ, अव्यर्थ दोनों संसार में कुछ भी नहीं है जो हमारे लिये, जीवन के लिये उपयोगी है वह अव्यर्थ। परन्तु देखना यह है, क्या इससे ही हमें इतने बड़े जीवन को नाप लेना चाहिये। यह तो एक हाथ से समुद्र को नाप लेने के बराबर है।

शतरूपा—मैं कुछ भी नहीं जानती मनु! मैं तो इतना ही जानती हूँ कि मैं इस महान् और विशाल समुद्र से अधिक अपने हृदय में करुणा, प्रेम लेकर आई हूँ। मैं इससे अपनी सम्पूर्ण सन्तान को भिगो देना चाहती थी पर देखती हूँ मेरा प्रयत्न विफल होता जा रहा है। विफल हो रहा है मनु!

स्वा० मनु—मैं भी यही देख रहा हूँ कि ब्रह्मा का बताया हुआ उपाय निर्जीव है। उसमें प्राण नहीं है, प्रेम नहीं है, सहानुभूति नहीं है, व्यर्थ है। सम्पूर्ण निष्फल!

शतरूपा—उत्तानपाद चला गया, मनु उसे लौटाओ। मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकती। हाय, मैं कैसे जीवित रहूँगी! (**देखती है प्रियव्रत उद्विग्न चित्त होकर जाने की तैयारी कर रहा है**)।

स्वा० मनु—कहाँ चले, प्रियव्रत!

शतरूपा—कहाँ जा रहे हो बेटा!

प्रियव्रत—जा रहा हूँ माताजी। कहाँ जाऊँगा कुछ नहीं मालूम। तुम्हारी बात

सुनकर सोच रहा हूँ जीवन कुछ भी नहीं है। मैं तो ध्यान करना चाहता हूँ। मैं जानना चाहता हूँ ब्रह्मा कौन है ? क्यों बार बार वह आकर तुम्हें कुछ करने को कह जाता है ? मैं एकान्त में बैठकर सोचना चाहता हूँ। मैं इस सम्पूर्ण विश्व को जानना चाहता हूँ। यह ब्रह्माण्ड किसने बनाया, यह संसार किसने बनाया, क्यों बनाया ? मुझे क्यों बनाया ? यह जीवन क्या है ? मरण क्या है ? यह सोचनेवाला कौन है ? मैं क्या हूँ ? मुझे कोई इच्छा नहीं है। मैं इच्छा होते ही उसे हृदय से निकाल दूँगा। उस दिन हरिण की मृत्यु क्यों हुई ? क्यों न मैं मृत्यु को जीत लूँ ? और इस जीवन से क्या लाभ है ? यही सब जानने के लिये मेरी आत्मा, मेरे प्राण छटपटा रहे हैं पिता ! मैं जानना चाहता हूँ मुझे आज्ञा दीजिये।

शतरूपा—बेटा, क्या तुम्हें इस तरह हम लोगों को निराधार छोड़कर जाना चाहिये ?

(आकूती के साथ रुचि का प्रवेश)

आकूती—(आते ही) माताजी, मैं जाना चाहती हूँ मुझे आज्ञा दीजिये। मैं इनके साथ रहना चाहती हूँ। न जाने क्यों ये मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। मैं इनके साथ रहना चाहती हूँ। **(रुचि के गले में हाथ डालकर)** तुम मुझे बहुत प्रिय लगते हो। तुम्हारा नाम क्या है ? रुचि—रुचि ! आओ हम दोनों चलें न अब ?

आकूती—रुचि, कितना सुन्दर नाम है। मेरी भी यही इच्छा है माँ कि मैं रुचि के साथ रहूँ। तुम मुझे मारोगे तो नहीं। **(आँखें मटकाकर)** हाँ, देखो मुझे मारना मत !

स्वा० मनु—तुम किसके लड़के हो रुचि ?

रुचि—मरीचि का पुत्र हूँ मैं। मैं बहुत दिनों से घूम रहा हूँ। एकांत निर्जन में

घूमते घूमते मेरा जी उकता गया। कल अचानक तुम्हारी यह कन्या मुझे उस नदी के किनारे मिल गई। मुझे यह बहुत सुन्दर लगी। मैंने कहा तुम मेरे साथ रहो। हम लोग नदी, समुद्र, झरनों के किनारे घूमेंगे। फूलों की सुगन्धि जब हमारे जीवन को प्रमत्त कर देगी तब हम दौड़ेंगे प्रसन्नता बिखेरते हुए। संध्या की लाली में जब हम दोनों का हृदय नाच उठेगा तब हम......... ।

स्वा० मनु—ओहो, तुम बहुत बोलते जा रहे हो। ठहरो। पहले यह बताओ तुम इसकी ठीक ठीक रक्षा कर सकोगे ?

रुचि—इतने दिनों एकान्त वास करते करते मेरा जी ऊब गया। कोई बोलने-वाला नहीं मिला। इसलिये चाहता हूँ खूब बोलूँ। जी भरकर बोलूँ। बोलता रहूँ। आज तुम मुझे मिले हो तो क्या बोलूँ भी न ! मैं तुम्हारी कन्या को बहुत अच्छी तरह रखूँगा। इतनी अच्छी तरह, जितने ठीक तरह से मैं स्वयं रहूँगा। हाँ...तो मैं क्या कह रहा था आकूती, मैं कह रहा था—संध्या की लाली में जब हमारा हृदय नाच उठेगा तब हम प्रसन्नता के प्रकाश से उसे और भी लाल बना देंगे। कोकिला के स्वर में स्वर मिलाकर जब मेरी प्रियतमा आकूती गायेगी तब हृदय के आनंद से उसका अभिषेक करूँगा। प्रातःकाल उषा के पूर्व दिशा से निकलते ही अर्जुन के वृक्ष के नीचे बैठकर हम लोग गायेंगे। उस स्वर लहरी से पक्षियों का स्वर मिलकर उस प्रदेश को गुंजायमान कर देगा, यही मैंने इसे बताया है। मरीचि की संतान होने के कारण मैं पाप नहीं जानता। परन्तु पाप पुण्य कुछ भी नहीं मानना चाहता। पाप पुण्य संसारी के लिये है मेरे लिये......।

आकूती—(**उसके मुँह पर हाथ रखकर**) बहुत मत बोलो प्रिय, देखो, माँ आश्चर्य से तुमको देख रही हैं।

रुचि—ठहरो, एक बात कह लेने दो। मनु, मैं एक बात कहना चाहता हूँ। तुम बुरा मत मानना। हम लोग मानस सन्तान हैं मरीचि की मानस सन्तान ! आकूती को लेकर मैं कितना सुखी हुआ हूँ। कदाचित् तुम्हें बताने के लिये ही मैं यहाँ आया हूँ। देव, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, भूत, प्रेत, राक्षस, देवता सभी तो मुझे आदर की दृष्टि से देखते हैं। वे मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। एक बार घूमते घूमते ऐसा हुआ कि एक नागकन्या ने मुझसे प्रणाम करने को कहा। प्रणाम करना मैं क्या जानूँ मैं तो मरीचि की मानस सन्तान हूँ न ? मैं उन दिनों तप कर रहा था। योग के आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, समाधि, ध्यान और उसी तरह का था वह मेरा तप। मैं उस समय प्रणय व्रणय कुछ भी नहीं जानता था। मैंने उसका तिरस्कार किया। उसने नागों, राक्षसों, किन्नरों, गन्धर्वों की सहायता से मुझ पर आक्रमण करना चाहा, परन्तु मरीचि की मानस सन्तान होने के कारण वे मेरा कुछ भी न बिगाड़ सके। उसके...

शतरूपा—ठहरो, क्या तू इस वावदूक रुचि के साथ रहना चाहती है ?

आकूती—हाँ (**प्यार से**) माँ, मुझे इसकी बातें बहुत अच्छी लगती हैं।

प्रियव्रत—(**रुचि से**) तुम इतने तपस्वी होकर स्त्रियों के फेर में पड़ना चाहते हो। तपस्या क्यों नहीं करते ?

रुचि—(**क्रोध से**) आप लोग मुझे बोलने नहीं देना चाहते। तो मैं आपकी बात का उत्तर क्या दूँ। मैं जाता हूँ। आओ प्रिये, आकूती चलें ?

आकूती—मैं जाती हूँ माँ ! जाती हूँ पिता जी ? (**रुचि के गले में हाथ डालकर चली जाती है**)।

शतरूपा—इतना बोलने वाला रुचि, मैं तो आश्चर्य में रह गई। (**सोचकर**) उत्तानपाद गया, आकूती गई ?

प्रियव्रत—मैं भी जाता हूँ। मेरा चित्त उद्विग्न हो रहा है। माँ, आज्ञा दो, पिता आज्ञा दो!

शतरूपा—हाँ, सब लोग चले जाओ। सृष्टि इसीलिये है कि पैदा होते ही सब लोग अपना मार्ग ग्रहण करें। मनु, तुम सृष्टि के विधाता हो, क्या कोई ऐसा नियम नहीं बना सकते कि इनमें से सब अपने माता पिता के पास रह सकें? क्या हम इसी तरह अकेले रहेंगे? ब्रह्मा से पूछो। कोई उपाय करो! दो कन्या देवहूती और पुरुहूती रह गई कदाचित् वे भी किसी दिन अपना मार्ग ग्रहण करेंगी। क्या कोई भी तुम्हारा कहना नहीं सुनेगा?

स्वा मनु०—ब्रह्मा ने अभी मुझे कुछ नहीं बताया। परन्तु देखता हूँ गृहस्थ एक झंझट है, उत्पत्ति एक कष्ट है, बन्धन है। इतने पर भी कन्या पति चुनकर सन्तान उत्पन्न करेगी ही। पुरुष उसे अपनी पत्नी बनाकर सन्तान बढ़ावेगा। कदाचित् यही विधाता की इच्छा है कि रोओ और उसी मार्ग पर चलते जाओ। तुम भी जाओ बेटा! जाओ तप करो और सृष्टि के इस प्रपंच में न पड़ना, जाओ।

प्रियव्रत—जो आज्ञा! (**प्रणाम करके चला जाता है**)।

स्व० मनु—(**चिन्ता में मग्न होकर**) कुछ समझ में नहीं आता। न जाने यह कैसा संसार है। मैं भी क्यों न चला जाऊँ। क्या मुझे इच्छा नहीं होती कि मैं जानूँ कि यह संसार क्या है? न जाने मेरे ऊपर ब्रह्मा ने यह भार क्यों डाल दिया है? न जाने ब्रह्मा कौन है? क्या इस संकट को मैं पार कर सकूँगा? नहीं शतरूपा, तुम मेरी कोई नहीं हो। न जाने उस दिन हम लोग किस तरह मिल गये! इतना कष्ट बढ़ गया। मैं नहीं जानता जब रुचि मानस सन्तान है तब फिर इस प्रकार की उत्पत्ति की क्या आवश्यकता है? मैं यह नियम तोड़ देना चाहता हूँ। कोई क्रोध करता

हो तो करे। मैं ब्रह्मा का कौन हूँ। ब्रह्मा मेरा कोई नहीं है। मैं भी सोचूँगा, तब करूँगा। शतरूपा, अब से तुम मेरी कोई नहीं हो। मैं भी जाता हूँ।

शतरूपा—(**घबराकर**) मनु, यह तुम क्या करते हो! क्या मुझे अकेली, निःसहाय छोड़ जाओगे? नहीं, ऐसा न करो। मैं तुम्हारी सेवा करूँगी। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। (**एकदम शोक विह्वल होकर मनु के पैरों पर गिर जाती है**)।

स्वा० मनु—(**शतरूपा को पैरों में पड़ा देखकर**) अरे शतरूपा, तुम यह क्या कर रही हो? उठो (**उठाते हैं**)।

शतरूपा—मुझे अवलम्ब दो मनु! जो चले गये उन्हें जाने दो, पर तुम मत जाओ। देखो, (**सोचती हुई**) इस जीवन में मेरा कोई नहीं है। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकती।

स्वा० मनु—मैं किसी को नहीं चाहता। मैं तुम्हें भी नहीं चाहता। मैं मरना भी नहीं चाहता। ब्रह्मा ने मुझे बहकाकर नरक में डाल दिया है। मैं स्वतंत्र था। (**मुँह फेरकर दूसरी ओर देखने लगता है**)।

शतरूपा—(**एक दिशा की ओर देखती हुई**) नहीं नहीं, मुझे कुछ दिखाई पड़ रहा है। मुझे एक नया संसार देख पड़ता है।

स्वा० मनु—(**आश्चर्य और उत्सुकता से उस ओर मुड़कर**) क्या देख पड़ता है?

शतरूपा—देख पड़ता है, जैसे मैं और तुम प्रकृति के, संसार के सब कुछ हैं। पुरुष और स्त्री ही जीवन है। संसार में और कहीं भी कुछ नहीं है। कहीं भी कुछ नहीं है मनु! जैसे दो पैरों से गति होती है, दो हाथों से कार्य होता है। दो आँखों से निश्चयपूर्वक देखा जा सकता है। सब जगह दो ही तो हैं। इसी प्रकार हम-तुम दो ही तो संसार में हैं। हमें

किसी बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। जो चले गये, उन्हें जाने दो। अभी और सन्तान उत्पन्न करेंगे। इच्छानुसार सन्तान उत्पन्न करेंगे। जो हमारी आज्ञा में रहेंगे।

स्वा० मनु—यह तुम्हारा भ्रम है। जो सन्तान होगी, इच्छा भी तो उसके साथ ही होगी। वह कब चाहेगा कि स्वच्छन्दता छोड़कर वह मेरी और तुम्हारी सेवा करे।

शतरूपा—परन्तु......(**सोचकर**)।

स्वा० मनु—परन्तु क्या ?

शतरूपा—मैं सोच रही थी। एक बात मुझे याद आई थी। ठहरो, मैं उसे अच्छी तरह सोच लूँ। (**ध्यान करती है**) हाँ, याद आया। देखो, अब तुमने अपनी इच्छा से सन्तान उत्पन्न की। इसलिये सन्तान में तुम्हारी-जैसी स्वच्छन्दता, तप करने के लिये वन में जाने का भाव उत्पन्न हुआ। अब मैं अपनी इच्छा की सन्तान उत्पन्न करूँगी। मुझे देख पड़ता है, जैसा मैंने अभी कहा, मैं नारी हूँ। मैं कोमलता, करुणा, रक्षा, सहानुभूति, आज्ञाकारिता के भाववाली सन्तान उत्पन्न करूँगी। उत्तानपाद की प्रकृति मैं आज से नहीं बहुत दिनों से देख रही हूँ। मुझे वह बहुत उद्धत और स्वतंत्र लगा है। उसने मेरी कई बार अवज्ञा की है। प्रियव्रत को भी मैं सदा से देखती आ रही हूँ कि बहुत सीधा पुत्र है और उसमें सदा से कुछ सोचते रहने का स्वभाव है। उस दिन मेरे ही कहने से वह उत्तानपाद के साथ बाहर गया था कि लड़ाई हो गई।

स्वा० मनु—मुझे तुम्हारी ये बातें बिल्कुल व्यर्थ देख पड़ती हैं। मैं अब यह सोच भी नहीं सकता।

शतरूपा—आकूती में अवश्य कुछ मेरी छाया है। वह सीधी-सादी कन्या है इसलिये वह रुचि-जैसे बातें करनेवाले आदमी के साथ चली गई। मैं

भी तो इसी तरह तुम्हें देखकर, तुम्हारे बल को देखकर तुम पर मुग्ध हो गई थी। अब मुझे विश्वास है, मेरी ये दोनों सन्तानें देवहूती और प्रसूती आज्ञाकारिणी कन्याएँ होंगी। तुम उद्विग्न मत बनो मनु! मैं तुम्हें जीवन का वास्तविक रूप दिखाऊँगी।

स्वा० मनु—(**उसी भाव से**) यदि सृष्टि उत्पन्न करना ही जीवन है तो मैं जीवन से ऊब गया हूँ। मैं तुमसे ऊब गया हूँ। तर्क, वितर्क, लज्जा, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष का नाम संसार है। मैं संसार से घृणा करता हूँ। (**मुँह फेर लेता है**)।

शतरूपा—नहीं नहीं तुम मेरी ओर देखो। इधर देखो मनु! जीवन न तो तर्क-वितर्क ही है न लज्जा, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष ही। वह बहुत सुन्दर है। मैं देखती हूँ जैसे मैं सब कुछ हूँ। मुझमें कुसुमों की सुरभि है, मद की मादकता, वैभव का उल्लास, मोक्ष का सुख, हृदय का आनन्द। हम और तुम ही तो जीवन हैं। हम दोनों ने प्रियव्रत, उत्तानपाद, आकूती, देवहूती और इस छोटी-सी कन्या प्रसूती को जीवन-दान दिया है। हमने कितनी महान् वस्तु इन लोगों को दी है, संसार को दी है। क्या तुम यह नहीं देख पाते?

स्वा० मनु—मैं तप, ध्यान द्वारा इस विश्व को जानना चाहता हूँ। जिसने इस संसार को बनाया, उसको जानना चाहता हूँ। मैं उत्पत्ति को लात मारकर शक्ति प्राप्त करना चाहता हूँ। मुझे बड़ी लज्जा होती है, जब मैं देखता हूँ कि छोटा-सा प्रियव्रत संसार त्यागकर संन्यासी हो गया है और मैं उसका पिता संसार के बन्धन में पड़ा हूँ।

शतरूपा—इसमें लज्जा की कोई बात नहीं है। तुम्हें ब्रह्मा ने जो काम सौंपा है, उसी कर्तव्य का तुम पालन कर रहे हो। यह कोई हीन कार्य तो नहीं है। परन्तु मैं तो जितना सोचती हूँ, मुझे ज्ञात होता है जैसे मैं ही ईश्वर

हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही जीवन हूँ, मैं ही मोक्ष हूँ। तुम मेरी ओर देखो। जीवन का नाम आनन्द है। हम लोगों को किस वस्तु की कमी है। कौन-सी वस्तु अप्राप्य है। तुम मेरी ओर देखो! **(हाथ पकड़कर अपनी ओर मोड़ना चाहती है)।**

स्वा० मनु—**(उसी भाव से)** नहीं, मैं तुम्हारी ओर अब न देखूँगा। मुझे तुमसे घृणा है। तुममें आकर्षण है। न जाने क्यों पहली बार में ही तुमने मुझे अपनी ओर खींचना प्रारम्भ कर दिया। मैं अब स्त्री मात्र से घृणा करता हूँ। तुम स्त्रियों में एक मद है जिसका अन्त असह्य है। तुममें लुभावनापन है जो सहज ही अपनी ओर खींचता है। तुम्हारे शरीर से सुगन्धि उठ रही है। वह मुझे बरबस तुम्हारी ओर आकृष्ट कर रही है। इतने पर भी अपने को रोककर, अपने हृदय को दबाकर, अपने को मार-कर मैं कहता हूँ कि मुझे जाने दो। ब्रह्मा ने मुझे बड़ा धोखा दिया है।

शतरूपा—नहीं मनु, ऐसा न कहो। मैं कहीं की न रहूँगी। मैं मर जाऊँगी। **(रोते-रोते मनु के पैरों पर गिर पड़ती है। मनु उसे पैरों से ठुकराकर चले जाते हैं। देवहूती और प्रसूती रोने लगती हैं)।**

देवहूती—माँ, पिताजी क्यों चले गये?

शतरूपा—क्या जानूँ बेटी क्यों चले गये। चले गये इतना ही जानती हूँ। थोड़े ही दिनों में न जाने क्या से क्या हो गया? **(पिछली बातें याद करके)** ओः कुछ समय पूर्व मैं कितनी प्रसन्न थी? स्वतन्त्र, न किसी की याद थी न मोह था। मनु, तुम्हारे पीछे मैंने उत्तानपाद प्रिय-व्रत को छोड़ा। क्यों न मैं भी सब कुछ छोड़कर चली जाऊँ? **(कन्याओं की ओर देखकर)** इन निरपराध कन्याओं को छोड़कर? नहीं, यह मुझसे न हो सकेगा। यह मुझसे न हो सकेगा। **(दोनों को उठाकर प्यार से मुँह चूमती है)।**

चौथा दृश्य

[समुद्र के तट पर मनु बैठे हैं। दाढ़ी बढ़ी हुई है। सिर के बाल सफेद होगये हैं। सामने अपार समुद्र लहरा रहा है, पीछे विशाल पर्वत-श्रेणी है। मनु बैठे सोच रहे हैं।]

मनु—(**सोचते हुए**) यह समुद्र कितना महान्, अगाध, अपार है और ये पर्वत, अपने शिखर से आकाश को चीरने वाले, स्थिर वृक्ष, इन सबकी अपनी परिधि है, सीमा है और ये आकाश—काले, नीले, मटमैले, पीले, धुएँ का एक समुद्र, लाल लाल जीवन की तरह बदलने वाले रंग-बिरंगे। ये सब अपनी अपनी सीमा लिये हैं। ऊँचाई में, लम्बाई में, चौड़ाई में इन सबकी एक सीमा है परन्तु मनुष्य इनका सौंवा भाग भी नहीं, लघु लघु-तर; किन्तु उसकी आशाएँ संसार की सब वस्तुओं से बड़ी। समुद्र से भी महान्, आकाश से भी अधिक व्यापक, वृक्षों से भी अधिक स्थिर, दृढ़! उत्तानपाद इस संसार को अपने वश में करना चाहता है, जो शिला के छोटे से आघात को भी नहीं सह सकता। वह पर्वतों पर अपना साम्राज्य चाहता है, जो वृक्ष की शाखा को भी नहीं छू सकता। वह आकाश में उड़ जाना चाहता है। कैसा है यह जीवन? कितनी आशा, कितनी उमंग है इसमें। मैंने शतरूपा को त्याग दिया। प्रियव्रत, उत्तानपाद, आकूती, देवहूती को छोड़कर आया हूँ पर न जाने क्यों मुझे देख पड़ता है जैसे कोई मैंने पाप किया है। मैंने कर्तव्य का पालन नहीं किया। मैं एक अभाव-सा क्यों अनुभव कर रहा हूँ। वर्षों तप करते बीत गये। देखता हूँ उसका कोई प्रभाव मुझ पर नहीं पड़ रहा? क्या मनुष्य सचमुच सबसे बड़ा है? इस आकाश से, इस समुद्र से, इन भूधरों से जिसकी छाती पर असंख्यों वृक्ष हैं। असंख्यों शिलाखण्ड हैं। अपार जलराशि जिनके

हृदय से गिरा करती है, ज्वालामुखी हैं, ये मूक हैं, निस्तब्ध हैं, शान्त हैं ? पर मनुष्य कितना अशान्त ? इतना तप करने के बाद भी मुझे सन्तोष क्यों नहीं मिल रहा है ? **(उत्तानपाद का एक स्त्री के साथ प्रवेश)**

उत्तानपाद—**(पिता मनु को बैठा देखकर)** अरे तुम हो ? निकम्मे पिता, तुमने इतना विशाल जीवन प्राप्त करके क्या पाया ? इधर देखो, मैंने पर्वतों पर अपार साम्राज्य स्थिर किया है ! पचासों सिंहों से युद्ध करके धराशायी कर दिया है। इन्द्र से युद्ध करके उसकी सेना को मैंने जीत लिया है ! मैं कितना महान् हूँ। हाथियों से युद्ध करके उन्हें अपने चढ़ने का वाहन बनाया है और तुम स्त्री की तरह कोमल, विजित की तरह निः-सहाय यहाँ क्या कर रहे हो ! माता कहाँ हैं, प्रियव्रत कहाँ चला गया ! मुझे देखो **(सामने आती हुई एक मनुष्य की छाया देखकर)** यह कौन है मगर की तरह रेंग कर चलने वाला। हाथी को छाया की तरह मस्त **(उधर ही देखकर)** तुम कौन हो रे ?

कर्दम—**(अपनी धुन में घूमते हुए उत्तानपाद के पुकारने का कुछ भी ध्यान न करके)** मनु-उत्तानपाद ? पिता-पुत्र, किन्तु दो विरोधी तत्व ?

मनु—तुम कौन हो। एक विशाल छाया की तरह।

कर्दम—**(हँसते हुए)** कर्दम ! कर्दम है मेरा नाम मनु ! यह तुम्हारा पुत्र उत्तानपाद है न ? **(दूसरी ओर देखते हुए)** समुद्र को पार करने की इच्छावाली चींटी की तरह यह उत्तानपाद !

उत्तानपाद—मूर्ख, तुझे ज्ञात नहीं है, मैं इस पृथ्वी का शासक हूँ। मैंने पर्वतों को रौंध कर, सिंहों को पछाड़ कर, हाथियों की कुचल कर एक-छत्र शासन स्थापित किया है।

कर्दम—**(उपेक्षा से)** मनु, तुमने इतना अभिमानी पुत्र क्यों उत्पन्न किया ? यह बालक सूर्य को निगलना चाहता है। क्या मछली समुद्र को पी

सकती है ? मनुष्य संसार को स्थिर रखने के लिये उत्पन्न किया गया है मनु !

मनु—कर्दम, तुम ज्ञानी हो। मुझे बताओ, मेरा चित्त इतना अशान्त क्यों है ?

उत्तानपाद—पिता, तुमने जीवन को जीवन नहीं समझा। इसीलिये दुखी हो। मुझमें आज बहुत आनन्द है। मैं उत्साह, बल का एक प्रतीक हूँ। इच्छा होती है इस सम्पूर्ण विश्व को मुट्ठी में दबा कर पीस डालूँ। उस दिन अचानक ज्ञात हुआ, इन्द्र देवताओं का एक राजा **(सामने के पर्वत-शिखर की ओर संकेत करके)** सरोवर में विहार कर रहा है। मैं वहाँ पहुँच गया। युद्ध के लिये उसे पुकारा और हरा कर उसकी सबसे सुन्दरी अप्सरा को मैं अपने साथ ले आया हूँ। यही मेरा जीवन है। तप, ध्यान कोई भी पदार्थ नहीं है। कर्दम, मैं चाहूँ तो अभी तुम्हें मार सकता हूँ। आओ चलें प्रिये ! **(स्त्री का हाथ पकड़ कर चला जाता है)।**

कर्दम—मारने से जीवन देने का काम बड़ा है। मनु, तुमने विधाता की इच्छा के विरुद्ध कार्य किया है इसीलिये तुम्हें शान्ति नहीं मिल रही है। तुमने प्रकृति के विधान को तोड़ा है।

मनु—विधाता का विधान क्या इसी में है कि उत्तानपाद-जैसी संतान उत्पन्न की जाय ?

कर्दम—इन भूधरों पर जो ये वृक्ष उगे हैं यह क्या वे सब ही उपादेय हैं। कुछ काँटेदार, कुछ अच्छे सुगन्धिवाले। कुछ से लाभ होता है, कुछ से हानि। उत्तानपाद को देखकर मेरा भी यही विचार हुआ कि मनु ने इस प्रकार की सन्तान क्यों उत्पन्न की परन्तु अब विचार बदल गया। मैं देखता हूँ, अच्छे बुरे का नाम संसार है। यदि एक तरफ उत्तानपाद है तो

दूसरी ओर प्रियव्रत भी तो है। शतरूपा आकूती भी तो हैं। मनुष्य स्वतंत्र प्राणी है कर्म का फल वह भोगेगा। तुम क्यों चिन्ता करते हो? मनु, तुम विधाता के वरद पुत्र हो। तुम्हें विधाता ने सृष्टि उत्पन्न करने के लिये ही बनाया है। तुमने कर्तव्य का पालन नहीं किया इसीलिये तुम अशान्त हो, भ्रान्त हो। तुमने शतरूपा को त्याग कर तप के द्वारा शान्ति प्राप्ति करनी चाही इसीलिये तुम्हें तप करने पर भी शान्ति नहीं मिल रही है। कर्तव्य संसार में बड़ा है, तप से भी, शक्ति से भी।

मनु—तुम ठीक कहते हो। मैंने शतरूपा को त्याग कर भूल की। मैं अब उसका प्रायश्चित्त करूँगा। जाता हूँ कर्दम, मैं जाता हूँ। अरे, उठा क्यों नहीं जाता?

कर्दम—हाँ जाओ और कर्तव्य का पालन करो। विधाता ने जो काम तुम्हें सौंपा है, उसे पूरा करो। इसी से तुम्हारा जीवन सार्थक होगा।

मनु—(**जाता हुआ लौटकर**) विधाता ने मुझे ही यह काम सौंपा है, मैं नहीं मानता। तुम्हें भी यह कार्य सौंपा होगा, तुम तो मानस सन्तान हो।

कर्दम—(**सोचकर**) मुझे, नहीं मनु, मुझसे यह काम नहीं हो सकता। मैं तो मरीचि की मानस सन्तान हूँ निर्द्वन्द्व, निस्पृह। इच्छा होती है, और हाँ......तुम्हें मालूम है, रुचि ने उत्पत्तिभार स्वीकार कर लिया है।

मनु—तुम असत्य कहते हो। तुम्हें भी वही भार दिया गया है।

कर्दम—असत्य, मैं असत्य क्या जानूँ। असत्य क्या होता है, यह मैं आज तक न जान पाया।

मनु—तुम भी तो कर्तव्य का पालन नहीं कर रहे कर्दम!

कर्दम—मानस सन्तान उत्पत्ति नहीं कर सकती। हम तो विधाता के विफल प्रयत्न हैं मनु!

मनु—रुचि ?

कर्दम—रुचि भी नहीं। मानस-पुरुष तो कल्पना है, क्रिया नहीं। इसके लिये तो तुम्हीं उपयुक्त हो मनु।

मनु—मैंने ठेका नहीं लिया है ऐसा करने का। ब्रह्मा जाने और उसका काम। मैं फिर तप करूँगा। (**एक युवती का प्रवेश**) तुम कौन हो। यहाँ क्या करने आई हो ?

युवती—वह रुचि, रुचि न जाने कहाँ चला गया मुझे छोड़कर। मैं तब से उसे ढूँढ रही हूँ। वह कहाँ चला गया ? बता सकते हो ?

मनु—(**ध्यान से देखकर**) कौन आकूती ?

युवती—(**मनु की ओर ध्यान से**) तुम कौन मनु ?

कर्दम—रुचि। व्यर्थ है मानस सन्तान।

मनु—हाँ, मैं मनु हूँ।

आकूती—(**दौड़कर पिता से लिपट जाती है**) मनु तुम्हें क्या हो गया। (**आश्चर्य से देखकर**) तुम्हारे सब बाल सफेद हो गये। तुम्हें क्या हो गया पिता !

मनु—(**उसी भाव से**) समय के प्रभाव से सब होता है। मैं न जाने किधर जा रहा हूँ। रुचि कहाँ चला गया ?

आकूती—जाने कहाँ चला गया मुझे छोड़कर। एक प्रातः उठकर चला गया। कुछ दिनों से न जाने उसे क्या हो रहा था। जैसे मेरा बन्धन शिथिल पड़ गया हो। उठते-बैठते ध्यान में मस्त रहता था। मैंने बहुत चाहा कि मुझसे पहले की तरह बातें करें। हँसे, मेरा आलिंगन करे, परन्तु न जाने उसे क्या हो गया। तब से उसे ढूँढ रही हूँ। नर इतना निर्दय है यह मैं न जानती थी।

कर्दम—सुना मनु ? नर इतना निर्दय है।

मनु—यह नारी का स्वार्थ है जो उसे निर्दय कहता है।

रुचि—कैसे ? (**लकड़ी टेके शतरूपा का प्रवेश**)।

शतरूपा—नारी का स्वार्थ ? नारी में क्या स्वार्थ है मनु, तुमने मुझे छोड़कर क्या पाया, मैं तुम्हारे मार्ग में कब बाधा बनी, मैंने तुम्हें क्या नहीं दिया ?

मनु—तुम आ गई ?

आकूती—माँ, (**लिपट जाती है**) माँ अरे, तुम बूढ़ी हो गई ? तुम्हारा रूप बिगड़ गया है। शरीर में झुर्रियाँ पड़ गई हैं, फिर भी न जाने तुम और पिता मनु मुझे क्यों अच्छे लगते हैं। कभी कभी तो रुचि से भी अधिक प्यारे। माँ, रुचि मुझे छोड़कर चला गया, न जाने कैसा निर्दय है वह ?

मनु—माया है, छल है, भ्रम है ! कोई किसी का नहीं।

शतरूपा—हो सकता है।

कर्दम—मैं जाता हूँ। मेरा मन ऊब रहा है। ऐसी बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं।

शतरूपा—मैं न नर को बुरा कहती हूँ न नारी को। न नर स्वार्थी है न नारी। दोनों संसार के दो स्तम्भ हैं। नर यदि सूर्य है, दिन है जिससे संसार को आलोक मिलता है तो नारी चंद्रमा है, रात है जो मनुष्य को अंधकार में प्रकाश का मार्ग दिखाती है। वह अंधकार भी है तो सब पापों को भुला देने के लिये। प्रायश्चित्त की निद्रा में सब कुछ धो डालने के लिये, तुम्हें नारी से घृणा है, परन्तु उसने घृणा नहीं सीखी। उसके पास प्यार है, स्नेह का समुद्र है, करुणा है, दया है, माया है, ममता है जिससे वह मनुष्य को भिगो देना चाहती है, उसे सुखी बनाना चाहती है। रुचि आकूती को छोड़कर चला गया परन्तु आकूती उसके

लिये दुखी है। रुचि क्यों नहीं दुखी हुआ। इसीलिये कि उसके हृदय में वास्तविक प्रेम नहीं है। परन्तु वह अकेला नहीं रह सकता उसे फिर आना पड़ेगा। उसका निर्वाह नारी के बिना नहीं हो सकेगा। यदि संसार में रहना है, चलना है, दौड़ना है तो दो पैरों से ही चला जा सकता है, दौड़ा जा सकता है। इसीलिए हमें दो पैर मिले हैं, दो हाथ मिले हैं, दो आँखें मिली हैं, दो कान मिले हैं। कोई अकेला संसार में कुछ नहीं है।

मनु—शतरूपा, तुम इतनी उत्पत्ति करके दुखी नहीं हुईं, इसी का मुझे आश्चर्य है।

शतरूपा—मुझे कोई दुख नहीं है। तुम मुझे छोड़कर चले आये, परन्तु मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती।

कर्दम—ऐसी बातें तो मैंने कभी नहीं सुनी थीं।

आकूती—न जाने माँ, तुम मेरे हृदय की बातें ही कर रही हो ?

शतरूपा--उत्तानपाद इतना उद्दण्ड, उद्धत, अभिमानी यहाँ से लौटकर घायल होकर मेरे पास आया। वह हाथियों से लड़ते-लड़ते लहूलुहान हो गया था। मूर्छा की अवस्था में उसने मुझे याद किया। उसकी पत्नियाँ उसे मेरे पास ले आईं। मैंने उसकी सेवा की। उसको प्यार किया ! वह ठीक हो गया। मेरे पास प्रेम के सिवा और है ही क्या, नारी के पास यही है मनु ? अब तुम बूढ़े हो गये हो। सब बाल सफेद हो गये हैं। तुम्हारा शरीर शिथिल हो गया है। चलो, मैं तुम्हारी सेवा करूँगी। तुम तप कर चुके। जो कुछ होगा वह पीछे नहीं हट सकता। मुझे इसका कोई दुख नहीं है। मैं ही सृष्टि हूँ मनु। मैं ही सृष्टि का सत्य ?

मनु—**(प्रभावित से होकर)** विचित्र बात है। उत्तानपाद जैसा लड़का लौटकर तुम्हारे पास आया ?

कर्दम—सृष्टि का यह रूप मैं आज ही देख सका हूँ। शतरूपा, तुम धन्य हो।

मनु—कर्दम, क्या तुम्हें इसमें कोई नई बात लगती है ?

कर्दम—सब कुछ नया है। नारी की उपयोगिता को मैं बहुत बड़ा मानता हूँ।

शतरूपा—प्रियव्रत घर लौटकर आ गया है। उसने प्रसूती के साथ रहना स्वीकार किया है।

मनु—(आश्चर्य से उछलकर) प्रियव्रत भी आ गया ?

शतरूपा—उत्तानपाद के तीन सौ पुत्र हुए हैं। उसने एक पहाड़ के ऊपर अपना स्थान बनाया है।

मनु—सब नया सुनाई दे रहा है। (उठते हैं पर जैसे उठा नहीं जाता फिर बैठ जाता है) पैरों को न जाने क्या हो गया ? चलते हुए अँधेरा छा जाता है आँखों के सामने।

शतरूपा—(मनु के पैरों को मसलती हुई) तुम्हारी अवस्था ही ऐसी है। (कन्याएँ सेवा करती हैं थोड़ी देर के बाद) खड़े हो जाओ। (हाथ पकड़कर खड़ा करती हैं)।

मनु—नहीं, अब मैं न चल सकूँगा। मुझे उस दिनवाली हरिणी की सुध आ रही है। वह उसका मरण ! (एकदम लड़खड़ाकर गिर जाते हैं कर्दम, आकूती, शतरूपा उन्हें सँभालतीं हैं। उनका उपचार करतीं हैं। कोई मुँह में जल डालता है, कोई हाथ-पैर दबाता है किन्तु मनु धीरे-धीरे प्राण त्याग कर देते हैं ! सब आश्चर्य, शोक से मनु को देखते रहते हैं। प्रियव्रत, उत्तानपाद और बहुत से व्यक्ति आकर देखते हैं।)

सब—पिता को यह क्या हुआ माँ ?

शतरूपा—मनुष्य का यह अंतिम रूप है बेटा ? आदिम युग के प्राणी का यह अंतिम रूप।

शतरूपा—यह मृत्यु है, उस दिन एक हरिणी की मृत्यु देखी आज मनु की।

ब्रह्मा ने कहा था यह मृत्यु है। मैं उस दिन मृत्यु को ठीक ठीक नहीं समझ सकी थी। आज देखती हूँ मृत्यु आवश्यक है। यही एक भय है जो मनुष्य को अहंकार से दूर रखता है, फिर भी मैं नहीं जानती यह क्या है? (**मनु के शरीर पर गिर जाती है। सब शतरूपा को उठाते हैं**)।

प्रियव्रत—(**ध्यानमग्न**) मैंने इतना तप किया किन्तु मैं इसको न जान सका।

उत्तानपाद—यह तो एक बड़ा भय है जिसका आगा पीछा कुछ दिखाई नहीं देता। अनेक प्राणियों का नाश करते हुए मुझे उनकी मृत्यु ने इतना प्रभावित नहीं किया जितना कि आज पिता की इस मृत्यु ने। आज मेरा संपूर्ण अभिमान टुकड़े टुकड़े हुआ जा रहा है।

कर्दम—यह भयंकर होते हुए भी आवश्यक है। जैसे हरे भरे वृक्ष का सूखकर ठूँठ हो जाना स्वाभाविक है इसी प्रकार मृत्यु है।

प्रियव्रत—किन्तु सृष्टि की यह बात तो बहुत बुरी है। सृष्टि के साथ विनाश की यह पूँछ लगाकर विधाता ने बड़ी भूल की है।

कर्दम—'भूल,' तुम इसे भूल कहते हो। यह भूल नहीं है। यह न हो तो संसार नरक बन जाय। उत्पात, उपद्रव, मार काट का अन्त ही न हो।

सब—कैसे, कैसे? यह तो विचित्र बात है।

कर्दम—सुनो, मृत्यु न होने पर सभी प्राणी जीवित रहेंगे। और आज नहीं सहस्र वर्ष बाद यह सृष्टि प्राणियों से भर जायगी, रहने को स्थान, करने को भोजन, पीने को जल, पहनने को वस्त्र सभी वस्तुओं का अभाव बढ़ता जायगा। सदा जीवित रहने के कारण सब प्रकार के स्नेह का भी अभाव हो जायगा। उस समय सृष्टि का क्या रूप होगा इसकी कल्पना कर सकते हो?

शतरूपा—किन्तु मेरा स्नेह तो सदा ही मनु के प्रति एक सा रहता?

कर्दम—असंभव है। मनु ने अपने जीवन का जो अनुभव तुमको दिया है

उससे लाभ उठाओ। प्राणी का जीवन के प्रति प्रयत्न में जो संचित विवेक है, वही मनुष्य की निधि है। उसे लेकर आगे बढ़ो, चलते चलो। मनुष्य का अनुभव भविष्य के अंधकार का आलोक है उसी प्रकाश से अपना मार्ग बनाओ। यही मनु का आदेश है।

शतरूपा—कर्दम, तुमने हमारी आँखें खोल दीं। तुम धन्य हो।

उत्तानपाद—हम लोग मनु के बताये मार्ग पर चलेंगे। पिता के आदेश का पालन करेंगे। संसार में सुख है हम सुख खोजेंगे।

प्रियव्रत—सृष्टि अमृत है। हम अमृत प्राप्त करेंगे।

शतरूपा—इस सोने के पात्र से सत्य का मुख ढका हुआ है, उसको खोलो। तुमको सत्य, धर्म का ज्ञान होगा।

सब—आदि पिता मनु की जय, स्वायंभुव मनु की जय।

(जय घोष में पर्दा गिरता है)

Chuni lal. Raina

~~Intermidate~~

~~Student~~

समाप्त

मनु और मानव

जल-प्लावन के पश्चात् आर्य संस्कृति के विकास का एक चित्र

मनु और मानव के पात्र

मनु	वैवस्वत मनु
इडा	मनु की पुत्री, पुरुष वेश में सुद्युम्न
श्रद्धा	मनु की पत्नी
शश्वती	ऋषि-कन्या इक्ष्वाकु की पत्नी
सूनृता	ऋषि-कन्या, शर्याति की पत्नी
अपाला	ऋषि-कन्या
घोषा	,, ,,
अरुन्धती	वशिष्ठ पत्नी
बुध	इडा का पति

विश्वामित्र, वशिष्ठ, अत्रि, भृगु, अंगिरस, शक्ति आदि ऋषि वर्ग इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र।

वासुकि, चित्र, अयोमुख, शंबर, वर्चि, बल आदि दस्यु तथा राक्षस

स्थान—विपाशा नदी,

सिन्धु के दोनों तट।

काल—

जल-प्लावन के पश्चात् जब मनु ने देखा कि सृष्टि बड़ी अस्तव्यस्त है, मनुष्य विशृंखल है, न यज्ञों की व्यवस्था ठीक है न सामाजिक व्यवस्था ही जड़ पकड़ पा रही है।

उपसंहार

(नेपथ्य से)

इसके पश्चात् मनु के पुत्र इक्ष्वाकु ने वशिष्ठ को अपना पुरोहित बनाकर अयोध्या के राजवंश की नींव डाली। उनके विकुक्षि, निमि, दण्ड तीन पुत्र हुए। इससे सूर्यवंश निकला।

दूसरे पुत्र नाभागोद्दिष्ट ने वैशाली राज्यवंश स्थापित किया।

तीसरे पुत्र शर्याति ने आनर्त (गुजरात) में राजवंश की स्थापना की।

चौथे पुत्र नाभाग ने रथीतारा में अपना राज्यस्थापित किया।

इन चारों पुत्रों से सूर्यवंश और बुध के संयोग से इडा में ऐल-(चंद्र) वंश की नींव पड़ी। इडा के पुरुरवस पुत्र हुआ। शेष नारिष्यंत, प्रांशु, नाभागोद्दिष्ट, कुरुष, पृषधृ वेदपाठी होने के कारण ब्राह्मण बन गये।

यही प्रारंभिक आर्य संस्कृति की कहानी है।

मनु और मानव

पहला अंक

पहला दृश्य

[एक प्रहर दिन चढ़े—आश्रम में मृगछाला पर वैवस्वत मनु बैठे हैं। बढ़ी हुई जटाएँ, दाढ़ी और मूछों से भरा हुआ तेजस्वी मुख। आँगन में वेदी बनी है जिसमें से थोड़ा थोड़ा धूम उठ रहा है। सामने भोजपत्र के कुछ चौड़े पत्ते हैं जिनमें ऋषि यज्ञ की वेदी का चित्र बना रहे हैं। लाल चंदन घिसा हुआ एक दोने में रखा है। सामने सरकण्डे की लेखनी। मनु पत्र पर कुछ गुनगुनाते हुए लिख रहे हैं फिर लेखनी रख कर उसे देखने लगते हैं। फिर लिखते हैं। कुटीर में सिरहाने की ओर की भूमि तकिये की तरह उठी हुई। उसके सामने एक और आसन पत्तों का बना है। एक छोटा आला, जिसमें वन की लकड़ियों के छोटे टुकड़े रखे हैं। ये ही टुकड़े रात को दीप की तरह जलते हैं। दूसरा आसन खाली है। आस पास कुछ मृगों के शावक घूम रहे हैं। कभी कभी कोई मृग आकर ऋषि की पीठ से अपना मुख रगड़ने लगता है। ऋषि उसको हटा देते हैं। वह दीवार से जाकर रगड़ता है। एक बार तीन-चार मृगों के बच्चे और एक मृगी आकर उस कुटीर में एकत्र होकर कूदने लगते हैं। मनु उधर देखते हैं और उनके 'हूँ' करते ही चले जाते हैं। थोड़ी देर बाद एक बहुत बालोंवाली गाय आकर इधर-उधर सूँघती हुई हवनकुण्ड के

पास बिखरी हुई सामग्री खाकर बैठ जाती हैं। कुछ आहट पाते ही फिर उठकर ओझल हो जाती है। इसी समय सिंह के गर्जन की ध्वनि सुनाई देती है और झुंड के झुंड पशु कुटीर के भीतर घुसने लगते हैं। इतने में बाल-युवक शर्याति आकर उन्हें बाहर निकाल देता है। युवक का अधोभाग मृगचर्म से ढका, रेखहीन मुख, बड़ी-बड़ी आँखें, बिखरे बाल। सुन्दर वयस लगभग सोलह वर्ष, किन्तु देखने में पूर्ण बलिष्ठ, कंधे में मूँज का यज्ञोपवीत, कमर में मूँज की तागड़ी। एक कंधे में धनुष, पीछे छाल से बँधे हुए कुछ बेढंगे बाण। मनु बालक को आया जान और पशुओं को भागते देखकर]

मनु—जीवन सबको प्रिय है शर्याति ! कदाचित् सिंह के गर्जन से भयभीत होकर ये पशु इधर आगये।

शर्याति—किन्तु पिता, ये कुटीर हमने अपने लिये बनाए हैं, पशुओं के लिये नहीं। (पत्र पर यज्ञ की रेखाएँ देखता है) ये रेखाएँ खूब खींची हैं। क्या हैं ये ? (पास झुक कर बैठ जाता है)।

मनु—(रेखाओं को ध्यान से देखते हुए) यज्ञ-कुण्ड का चित्र है शर्याति।

शर्याति—आवश्यकता। (श्रद्धा शर्याति बेटा शर्याति पुकारती हुई भीतर आ जाती है) हाँ माँ क्या हैं, देखो, पिता ने यह क्या बनाया है ?

श्रद्धा—अरे देख, कोई सिंह इधर आ गया है उससे संपूर्ण पशु भाग रहे हैं।

शर्याति—तो क्या वह कुछ कहता है माँ ? रात को करुष भैया उसे पकड़कर लाये हैं। उसे कुटीर के बाहर एक स्थूण से बाँध दिया है। वही कभी कभी गर्जता है माँ। मैं यही देखने के लिये आया था कि ये पशु भागे कहाँ जा रहे हैं ? (गर्व में भरकर बाहर निकल जाता है)।

श्रद्धा – मनु, मैं देखती हूँ इस संसार में सब पदार्थों के भीतर एक प्रकार का भय छिपा हुआ है। फूल के विकास के नीचे म्लानता, नदियों में सूख

जाने की भावना, पशुओं में हिंसक से भय और जरा। जीवन में मरण। हमको सब वस्तुओं में उनके प्रतिरोध को खोजना होगा। क्रिया को प्रतिक्रिया द्वारा......।

मनु—उनका एक उपाय है यज्ञ।

श्रद्धा—यज्ञ, क्या केवल यज्ञ मनु ?

मनु—हाँ, श्रद्धा। यज्ञ बृहद् यज्ञ। तुम देखती हो जब से मैंने इसका प्रचार किया है तब से लोगों में साहस बढ़ गया है। देवताओं कैसा बल आर्यों को प्राप्त हो गया है। अब सब लोग यज्ञ करते हैं। हम लोग निर्बल हैं न ?

श्रद्धा—हाँ, देवता ही तो हमारा बल हैं। देवताओं में विश्वास करो। मनुष्य, मनुष्य...नहीं नहीं। उस दिन...हाँ उसी दिन तो जब तुमने दो अरणियों के संघर्ष द्वारा अग्नि को उत्पन्न किया, तभी से मैंने समझा कि तुम्हीं संसार का निर्माण कर सकोगे। उस दिन तुम्हारा तेजस्वी मुख कितना भला लगता था। उसी ने तो मुझे तुम्हारी ओर खींचा है। एक यह कन्या इडा है जो अपना नया पथ बनाए जा रही है। मैं कहती हूँ—'विश्वास कर, देवताओं में विश्वास कर, ये ही तुझे बल देंगे' किन्तु वह माने तब न !

मनु—यह देखो, मैंने यज्ञ का मानचित्र तैयार किया है। आज से सब किसी को वेदी इस प्रकार बनानी होगी। सब ऋषियों के गोत्रों में जाकर उन्हें सूचना देनी होगी।

श्रद्धा—किन्तु एक बात तो देखो मनु, ये नक्षत्र मुझे रात को कितने सुन्दर लगते हैं। दिन में सूर्य प्रकाशमान होते हुए भी चंद्रमा के समान मधुर क्यों नहीं लगता ? अरे विवस्वान् के पुत्र मनु, ओः तुम कितने भयंकर देवता के पुत्र हो !

मनु—(यज्ञ के मानचित्र से दृष्टि हटाकर) भयंकर देवता ! भयंकर क्यों ? श्रद्धा, इडा अब तुम्हारे-जैसी होती जा रही है।

श्रद्धा—तो तुम क्या चाहते हो ? देखो उस ओर मत देखना। तुम्हीं ने तो नियम बनाया है न ?

मनु—नहीं, मैं वह सब नहीं कह रहा हूँ। मैं कहता हूँ वह तुम्हारे-जैसी रूपवती होती हुई भी तुमसे भिन्न दिशा में चल रही है। वह जब देखो, तब कुछ न कुछ सोचती रहती है।

श्रद्धा—यही तो बुरी बात है मनु ?

मनु—नहीं, यही तो अच्छी बात है। चिंतन ही हमारा प्रधान गुण है !

श्रद्धा—तो सोचना, प्रतिक्षण सोचते रहना क्या अच्छी बात है ?

मनु—हाँ, सोचना होगा। सोचते रहने के बिना काम भी तो नहीं चल सकता। जब सृष्टि उत्पन्न हुई है तो उसे जीवन भी दिखाना होगा। जीवन वही नहीं है जितना तुमने देखा। जीवन सृष्टि में एक महान् वस्तु है श्रद्धा !

श्रद्धा—मैं तो समझती हूँ जो कुछ हो रहा है उस पर विश्वास करते चलो। उसे बनाते चलो। देवता सब कर देंगे। (इडा का प्रवेश)।

इडा—देवता सब कर देंगे। देवता क्या कर देंगे ? और देवता सब कर देंगे तो हम क्या करेंगे ? हमारा काम हमको करना होगा। पिता, क्या तुम नहीं सोचते कि हमको कितना कार्य करना है ?

श्रद्धा—मैं तो इतना जानती हूँ, काम को जितना बढ़ाया जाय उतना बढ़ता है। किन्तु देवताओं में विश्वास करने, यज्ञ, तप, दान से ही जीवन की सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। मैं प्रतिदिन मंत्रों में यही देखती हूँ। तर्क को मैं अच्छा नहीं समझती। सोचने से तर्क उत्पन्न होता है और तर्क से विभ्रम।

मनु—देखो श्रद्धा, तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। आज जो मैंने

यज्ञ का यह मानचित्र बनाया है, उसे ले जाकर तुम्हें अत्रि, भृगु, विश्वामित्र और वशिष्ठ को दिखाना होगा।

श्रद्धा—यज्ञ के सम्बन्ध में जो तुम कहोगे वह मैं मानने को तैयार हूँ।

मनु—एक बात और।

श्रद्धा—वह क्या?

मनु—आर्यों को एक शृङ्खला में बाँधना।

इडा—ठीक है। मैं यही तो चाहती हूँ।

श्रद्धा—किन्तु मुझे इससे भय लगता है। देवताओं ने, वेदों ने, जो नियम बनाए हैं वे ही ठीक हैं। हमें उनके काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। जब यज्ञ के द्वारा देवताओं को प्रसन्न किया जा सकता है फिर वे ही हमारे रक्षक हैं तब हम अपनी क्यों चिन्ता करें। यह हमारा कार्य नहीं है मनु?

इडा—मैं यह कहने आई थी कि विश्वामित्र और वशिष्ठ में जो संघर्ष चल रहा है उसका प्रभाव उनके गोत्रों पर भी पड़ा है। वे लोग भी आपस में लड़ने लगे हैं। एक दूसरे की निन्दा करते हैं। यह क्या अच्छी बात है पिता? अभी कल की ही बात है, वशिष्ठ की गायों को विश्वामित्र के गोत्र के कुछ लोग रात्रि को आकर हाँक ले गये। इस पर उनमें युद्ध हो गया। दोनों ओर के कुछ व्यक्ति क्षत-विक्षत हो गये हैं। अब वशिष्ठ गोत्र के व्यक्ति आक्रमण की तैयारी करने लगे हैं। सम्भवतः आज वे लोग उन पर आक्रमण करके उनकी गौओं को हाँक ले जायँगे। इसका क्या प्रभाव और गोत्रों पर पड़ेगा, यही मैं सोचती हूँ।

श्रद्धा—वे लोग लड़ते क्यों हैं, क्या उनका देवताओं में विश्वास नहीं है?

मनु—(मानचित्र हाथ में लिये) यहाँ तक बातचीत हो गई! यह आर्य वर्ग के लिये अनुचित है इडा बेटी!

इडा—इसका प्रभाव दस्युओं पर यह पड़ा है कि उन्होंने आर्य गोत्रों पर

आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया है । अभी उस दिन वृषपर्वा की कन्या पौरवी को दस्यु उठा कर ले गये । गौओं को मार डाला । राक्षसों की सहायता से गोत्र के कुछ कुटीरों में आग लगाकर चले गये ।

श्रद्धा—यह तो बुरी बात है । देवता आर्यों की रक्षा करें ।

मनु—फिर पौरवी का क्या हुआ ?

इडा—कण्व के गोत्र के लोग दूसरे दिन दिन भर घूमते रहे तब कहीं सायंकाल को जाकर कन्या को खोज सके। क्या हम लोगों में कुछ व्यक्ति ऐसे नहीं हो सकते जो सब गोत्रों की रक्षा का भार अपने ऊपर ले सकें ?

मनु—वर्ण-विभाग की बात मैं कई दिनों से सोच रहा हूँ इडा ।

श्रद्धा—यह क्या, वर्ण-विभाग कैसा ? देखो, तुम देवताओं के कार्य में विघ्न न डालो । कहीं वे क्रुद्ध न हो जायँ ।

इडा—माँ, तुम भी विचित्र हो । देवता इसमें क्या करेंगे । क्या हमारा कुछ भी काम नहीं है । (**श्रद्धा चली जाती है**) । (**हाँफते हुए शश्वती का प्रवेश**)

आहा ! भगिनी शश्वती आई है ! कहो क्या समाचार है ?

शश्वती—(**मनु को देखकर**) अभिवादन करती हूँ ऋषिवर !

मनु—(**हाथ उठाकर**) कल्याण हो वत्से !

शश्वती—महात्मन्, बल, अयोमुख राक्षस दल-बल के साथ इधर आ रहे हैं। कदाचित् कुछ दस्यु उनको इधर बुलाकर लाये हैं । वह अभी सिन्धु के उस पार हैं । यदि हम लोग समय रहते युद्ध के लिये तैयार न हुए तो न जाने क्या हो ?

(**इक्ष्वाकु का प्रवेश**)

इक्ष्वाकु—पिता, ऋषिसमूह इधर आ रहा है आपके दर्शन करने । लोग बहुत विषण्ण दिखाई देते हैं ।

इडा—(इक्ष्वाकु से) क्या कई गोत्र के लोग हैं उनमें ?

इक्ष्वाकु—हाँ प्रायः सभी गोत्रों के हैं। मैंने उनसे पूछा क्या बात है तो वे कहने लगे हमने सुना है दस्यु हम लोगों पर आक्रमण करनेवाले हैं। मैंने पूछा तो पिता मनु इसमें क्या करेंगे ? आप सब लोग मिलकर युद्ध के लिये उद्यत हो जायँ।

इडा—तो क्या तुम चाहते हो गोत्र के लोग पिता से परामर्श न करें ?

मनु—तो आने देते न बेटा ?

इक्ष्वाकु—मैंने उन्हें कब रोका। मैं तो पूछ रहा था। बात यह है जब वे लोग आपस में लड़ते हैं तब तो तुम्हारी आज्ञा मानते नहीं आज जब बाहरी शत्रु के आक्रमण का भय हुआ तो तुम्हारे पास आ रहे हैं।

इडा—तुम मूर्ख ही रहे भैय्या ? भला बाहर के शत्रु के आक्रमण के समय भी क्या हम लोगों से नहीं मिलना चाहिये ?

इक्ष्वाकु—मैं चाहता हूँ एक बार यह विरोधी दल अपने किये का फल भोग तो ले, इसीलिये मैंने उनसे पूछा था ?

मनु—नहीं बेटा, यह नीति ठीक नहीं है। गोत्रों में संघर्ष होना स्वाभाविक है। यही तो मैं सोचता हूँ इन गोत्रों के लिये भी कोई न कोई नियम तो होना ही चाहिये। मनुष्य का जीवन नदी की धार के समान है केवल तटों नियमों से ही उसे रोका जा सकता है। उन्हें आने दो।

इडा—आर्यों के वर्ग पर चारों ओर से दुख के मेघ उमड़े आ रहे हैं। किन्तु दुख के कीचड़ से ही सुख का कमल खिलता है।

शश्वती—संघर्ष ही जीवन है ऋषिवर ?

मनु—रात्रि के पश्चात् तो दिन निकलता है। न केवल यह आर्यों के जीवन का प्रश्न है। इसमें भविष्य के सामाजिक विधानों का निर्माण भी मुझे दिखाई देता है। चलो मैं बाहर मिलूँगा।

दूसरा दृश्य

[समय दोपहर बलपुर-ग्राम में वासुकि दास की कुटीर का आँगन—सब दास एकत्रित हैं। अयोमुख, द्विमूर्धा, शंबर, वर्चि, बल आदि राक्षस बैठे हैं। विश्वरूपा, इडिविशा, कुयावा आदि स्त्रियाँ भी एकत्रित हैं। किसी के हाथ में नर-मांस, किसी के हाथ में श्वान-अस्थि है। बिखरे हुए बाल। काले रंग, बाहर निकले हुए दाँत। बल कपाल हाथ में लिये उसे बजा रहा है। अयोमुख कुत्ते की पूँछ को चचोड़ रहा है। द्विमूर्धा आँखें बन्द-सी किये अयोमुख की ओर ताक रहा है। शंबर उससे दूर द्विमूर्धा को घूर रहा है। वर्चि आकाश में उड़ते हुए पक्षियों के ध्यान में है। इडिविशा कुयावा के हाथ में नर-मांस देखकर ललचा रही है। एकाध बार वह हाथ बढ़ा कर उसे लेना चाहती है तो कुयावा झटककर छीन लेती है। इस तरह सब स्वार्थ में मग्न, खाने में वृत्ति रखे हुए बैठे हैं। वासुकि, चित्र तथा दो एक अन्य दास भी बैठे हैं। कुछ लेट गये हैं।]

बल—बन्धुओ, तुमको ज्ञात है कि ये दुष्ट आर्य लोग बराबर वहाँ से (वर्चि से पूछता हुआ) कहाँ से, बोलो न, कहीं से भी सही बढ़ते आ रहे हैं। इन लोगों ने नदियों के तट पर अपने (वर्चि से) क्या न जाने क्या...बना लिये हैं ? उनमें रहते हैं।

द्विमूर्धा—किन्तु ये हमसे तो कुछ भी नहीं कहते।

वर्चि—नहीं कहते तो न कहें। हमको तो कहना पड़ेगा।

अयोमुख—यह हमारी भूमि है।

शंबर—कल के तुम कहते हो हमारी भूमि है। अभी कल ही तो वासुकि तुम को बुला कर लाया है। नहीं तो पड़े थे नरक में।

अयोमुख--देख रे, बढ़कर बात मत कर, नहीं तो सिर काट डालूँगा।

शंबर—मैं तेरा रुधिर पी लूँगा। तूने ही त्रिजटा को द्विमूर्धा के हाथों सौंप कर मेरा अपमान कराया है।

अयोमुख—(उठकर) मैंने, बोल मैंने, शरीर का चर्म खींचकर चबा जाऊँगा कुक्कुर!

शंबर—हाँ तूने, शूकर, गर्दभ, कौशिक तूने। कहता है हस्तशृंगी को रख ले। क्यों रख लूँ हस्तशृंगी को।

वासुकि—देखो, हमने परस्पर युद्ध के लिये तुमको नहीं बुलाया है।

वर्चि—सुनो, सुनो। बल जो कहता है उसको सुन भी तो लेना चाहिये।

सब—अच्छा, हाँ अयोमुख तू ही चुप हो जा भाई। शंबर तू भी चुप रह नहीं तो अच्छा न होगा।

शंबर—(अकड़कर) अच्छा क्या न होगा? अच्छा था ही कब जो अब अच्छा न होगा।

बल—तो मुझे यह कहना है। (कपाल खुजाते हुए) हाँ, मैं क्या कह रहा था? हाँ, मैं यह कह रहा था कि यह देश हमारा है।

वर्चि—सो तो है ही। मैं अकेला संपूर्ण आर्यों को मारकर भगा सकता हूँ।

अयोमुख—और मुझसे पूछो तो ये लोग तो मेरा आहार हैं।

बल—आहार तो हम सभी के हैं।

विश्वरूपा—(बड़े-बड़े दाँतों पर जीभ फेरती हुई, जिसमें मांस के टुकड़े लगे हैं तथा रुधिर होठों से बाहर चिपट गया है) कुयावा, तू तो जानती होगी उष्ण रुधिर में कितना आनंद है। गट गट आहा।

कुयावा—उस दिन मैं आर्यों के बालक को पकड़ लाई। भई वाह, कितना आनंद मिला।

बल—हाँ, तो मैं यह कह रहा था। यह हमारा देश है।

वासुकि— यह तो दो बार हो चुका कि यह हमारा देश है।

चित्र—यदि बल सहस्र बार कहे तो भी यह हमारा देश ही रहेगा क्यों वासुकि कहते क्यों नहीं ? (**वासुकि चित्र का हाथ दबा देता है**)।

वर्चि—हाँ, सो तो मैं कहता हूँ। आगे क्या हुआ ?

वासुकि—होना क्या था। यह सब होने के लिये ही तो हम एकत्र हुए हैं। (**अयोमुख से**) उस दिन तुमसे मैंने यही तो कहा था, कि आर्य हमारे शत्रु हैं।

बल—यह हमारा क्या है वर्चि, कि हम देश से शत्रु को निकाल दें।

वर्चि—(**सिर खुजलाकर**) न जाने क्या है ?

वासुकि—कर्त्तव्य।

बल—हाँ, कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य। हमको सेना एकत्र करके उन पर आक्रमण कर देना चाहिये।

एक—अभी।

दूसरा—अभी नहीं रात्रि को।

बल—हाँ आज रात्रि को। सब लोग बतावें कि उनके पास कितने दास हैं।

वर्चि—हम लोग दास नहीं हैं। दास कहना हमारा अपमान है। यातुधान कहो।

अयोमुख—राक्षस क्यों नहीं कहते। मुझे तो राक्षस भला लगता है।

शंबर—मुझसे भी कुछ पूछोगे या अपनी ही कहोगे ?

अयोमुख—तू अभी बचा है अच्छा कह क्या कहता है ?

शंबर—(**क्रोध में**) फिर कहो। मैं कहता हूँ (**एकदम झपटकर अयोमुख को उठाकर पटक देता है। हस्तशृंगी, त्रिजटा दोनों शंबर से लिपटकर नोंचती काटती हैं। राक्षस दोनों को छुड़ा देते हैं**)।

सब—हाँ, भाई हम लोग दास नहीं हैं। यह आर्यों का दिया हुआ है।

वर्चि—आज से हम लोग राक्षस हैं दास नहीं।

एक—मुझे तो 'यातुधान, अच्छा लगता है।

दूसरा—मुझे 'दैत्य'।

तीसरा—मुझे 'दानव'।

बल—हमको एकत्र होकर संग्राम करना चाहिये।

कुछ—क्या उत्तर दें ?

वासुकि—अवश्य।

सब—अवश्य, अवश्य।

एक—भई वासुकि बड़ा बुद्धिमान् है।

वासुकि—यह सत्य है कि हमारी और तुम्हारी दो जातियाँ हैं। हम इस देश के प्राचीन निवासी हैं। फिर भी हम दोनों का उद्देश्य एक ही है।

एक—(**आश्चर्य में भरकर**) बड़े-बड़े शब्द याद हैं वासुकि ?

दूसरा—मैंने नहीं सुना क्या कहा ?

द्विमूर्धा—उद्देश्य। नहीं समझा। मूर्ख जो हुआ।

वासुकि—मेरे पास दो सहस्र व्यक्ति हैं जो आपके युद्ध प्रारंभ करते ही सहायता के लिये निकल आयेंगे।

बल—ठीक है।

वासुकि—यह निश्चय करो कि जब तक आर्यों को सिन्धु नदी के उस पार नहीं निकाल दिया जाता तब तक हम लोग बराबर युद्ध करते रहेंगे।

सब—अवश्य।

बल—वैसे तो हम स्वतंत्र हैं। आज यहाँ कल वहाँ। निशाचर हैं हम लोग।

वासुकि—यदि तुम्हारी सहायता से हमने आर्यों को पराजित कर दिया तो पर्याप्त सोमरस, असंख्य परिमाण में नर-मांस तुमको प्राप्त होगा।

(**सब सोमरस का नाम सुनते ही आनंद में झूमने लगते हैं**)

सब—हम लोग अवश्य लड़ेंगे। हमको तो आर्यों के यज्ञ से......(एक

दूसरे का मुख देखकर) क्या है ?

एक—न जाने ।

दूसरा—वासुकि से पूछो ।

वासुकि—द्वेष ।

सब—हाँ द्वेष है । उनके ईश्वर से, उनके यज्ञ से, उनके देवताओं से । उनसे ।

वासुकि—(खड़ा होकर) बन्धुओ, यह हमारे जीवन-मरण का प्रश्न है । हम तुम्हारी सहायता चाहते हैं । हमें विश्वास है तुम लोग हमारी सहायता करोगे । वस्तुतः तुमको भ्रम है कि आर्य लोग तुमको दास कहते हैं । दास वे हमको कहते हैं । उन्होंने हमारे व्यक्तियों को पकड़ कर उन्हें दास बनाया है । उनसे सब प्रकार का काम लेते हैं । हमारा कर्तव्य होगा कि हम 'दास' नाम को मिटाकर वास्तविक नाम द्रविड़ रखें । हम लोग द्रविड़ हैं । दास नहीं । (बैठ जाता है) ।

शंबर—हम युद्ध करेंगे । युद्ध करना हमारा कार्य है । आर्यों को पराजित करना भी । वही करेंगे । हम नमुचि, त्वष्ट्रा, अर्बुद, स्वर्भानु, पिप्रु की संतान हैं । हमारा धर्म कोई नहीं । हम दानव हैं, राक्षस हैं ।

इडिविशा—आर्यों के यज्ञों का नाश कर दो । उनको खा जाओ ।

कुयावा—उठो । हमें उनसे कोई द्वेष नहीं है किन्तु वे हमारे आहार हैं । आहार से किसी को द्वेष नहीं होता । मैं कुयावा हूँ । उनके क्षेत्रों का नाश कर दूँगी ।

विश्वरूपा—मैं नाना रूप धर कर उनको दुखी करूँगी ।

सब—हम वासुकि की सहायता करेंगे ।

बल—मेरे पास दो शत राक्षस हैं ।

अयोमुख—मेरे साथ पचास ।

द्विमूर्धा—मेरे साथ दस।

शंबर—मेरे साथ एक सहस्र।

वर्चि—मेरे साथ पाँच सौ।

बल—ठीक है। हमको युद्ध करना होगा। हम युद्ध करेंगे। मेरे मित्र किरात और आकुली हैं। वे हमारी सहायता करेंगे।

शंबर—एक बात और—हमें राक्षसों को यज्ञ करते देख कर ही युद्ध का उत्साह होता है। इसलिये आर्यों के यज्ञ प्रारंभ करते ही हम युद्ध करेंगे।

वासुकि—क्या इससे पूर्व नहीं?

सब—नहीं। तुम बताओ वे लोग यज्ञ कहाँ कर रहे हैं? हमारे पूर्वज यज्ञ के नाश करने वाले ही प्रसिद्ध हैं।

चिन्न—मैंने सुना है मनु एक वृहद् यज्ञ करनेवाले हैं। वैसे साधारण यज्ञ तो वे लोग प्रति दिन ही करते रहते हैं।

बल—हम उस यज्ञ को चाहते हैं जिसमें बलि हो, जिसमें सोम रस हो।

वासुकि—आप लोग उद्यत रहें मैं सूचना दूँगा। आप सब अपनी सेनाएँ तैयार रखें।

सब—हाँ, अवश्य। **(राक्षस इधर उधर बिखर जाते हैं वासुकि और चिन्न तथा उनके कुछ साथी)।**

वासुकि—राक्षसों की सहायता से ही हम लोग आर्यों को पराजित कर सकते हैं।

चिन्न—किन्तु ये तो कहते हैं कि यह हमारा देश है।

वासुकि—इनका देश कोई नहीं। और न ये एक जगह ठहर ही सकते हैं। न इनका कोई धर्म है, न उद्देश्य। यह देश हमारा है हमको यहाँ रहना है इसलिये आर्यों का नाश हमको अभीष्ट है, राक्षसों को नहीं समझे? कार्य सिद्ध करना चाहिये।

चिन्न—हाँ ठीक है। समझ गया।

तीसरा दृश्य

[वशिष्ठ का आश्रम—ऋषि मृगछाला पर बैठे मंत्र दर्शन कर रहे हैं। उनके गोत्र के स्त्री पुरुष अपना अपना आसन बिछाये सुन रहे हैं।]

एक ऋषि—ऋषिवर, सबसे प्रधान देवता कौन है, तथा संसार का सुख किससे प्राप्त होता है?

दूसरा—अरे सभी प्रधान हैं। अपने अपने कार्य के लिये सभी तो प्रधान हैं।

(एक नया व्यक्ति आकर बैठ जाता है।)

वशिष्ठ—सभी देवता अपने अपने कार्य के लिये प्रधान हैं भाई। किन्तु अग्नि मुख्य है। देखो, एक मंत्र है जिसका अर्थ यह है—*'हे तेजोमय अग्निदेव, तेरे ही कारण मनुष्यों को धन प्राप्त होता है। निर्धन मनुष्य भी तेरी उपासना करके संपन्न होते हैं। तेरी पूजा करने वाले विद्वान् याचक सब देवताओं से धन और उनकी कृपा प्राप्त करते हैं।'

एक—ठीक है ऋषिवर।

वशिष्ठ—हम लोगों की ओर से युद्ध करनेवाले इन्द्र हैं। इन्द्र महान् शक्ति हैं, वृत्र का नाश करनेवाले इन्द्र।

आगन्तुक—यातुधान कौन हैं महाराज?

वशिष्ठ—(आगन्तुक को देख कर संशय से) यातुधान, यातुधान राक्षस हैं। यज्ञ में विघ्न डालने वाले। तुम कौन हो?

---

*सभर्तो अग्ने स्वनीक रेवान मर्त्ये य आजुहोति हव्यम्।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति॥
ऋ० ७. १. २३.

आगन्तुक—एक जिज्ञासु हूँ।

एक ऋषि—तो कुछ पूछो न ? देखो ऋषि बड़े ज्ञानी हैं।

आगंतुक— विश्वामित्र के गोत्र के व्यक्ति कहते हैं—वशिष्ठ ठीक मंत्र-द्रष्टा नहीं हैं। वह बात कहाँ तक ठीक है ?

दूसरा ऋषि—मूर्ख हैं मूर्ख।

तीसरा—तुम्हें ज्ञात नहीं है सुदास पहले विश्वामित्र से यज्ञ कराते थे अब पिछले दिनों उन्होंने ऋषि के पुत्र शक्ति से यज्ञ कराया।

चौथा—ऋषि की महत्ता का तो इसी से परिचय हो जाता है कि शक्ति ने पाश-द्युम्न के यहाँ सोमरस पान करते हुए इन्द्र को मंत्रों के बल से सुदास के यज्ञ में बुला दिया।

पाँचवाँ— मंत्र का प्रभाव है भाई। जिसमें शक्ति होगी वही तो कुछ करके दिखा सकेगा। क्यों न विश्वामित्र ने सुदास को रोक लिया ?

पहला—स्पष्ट है कि वशिष्ठ ऋषि विश्वामित्र से ऊँचे हैं।

दूसरा—ऊँचे ही नहीं ज्ञानी भी। ऋग्वेद के संपूर्ण सप्तम मंडल के अर्थ इन्हीं पूर्व ऋषि ने देखे हैं।

आगन्तुक—यह तो ठीक है किन्तु न जाने क्यों वशिष्ठ को यातुधान कहते हैं।

पहला—(**एकदम उठकर**) दुष्ट दूर हो।

दूसरा—कौन है तू ?

तीसरा—कोई भी हो जो हमारे ऋषि की निंदा करता है वह वध के योग्य है। (**वह भागता है—यातुधान-यातुधान कहता हुआ। लोग दौड़कर पकड़ लेते हैं। वशिष्ठ क्रोध में भर जाते हैं। थर-थर काँपने लगते हैं।**)

पहला—(**पकड़कर ऋषि के सामने करते हुए**) जो आज्ञा हो इसको दण्ड दिया जाय ?

दूसरा—तुम कौन हो ?

आगन्तुक—मैं आर्य हूँ। विश्वामित्र के गोत्र में रहता हूँ उन्हीं से मुझे ज्ञात हुआ कि आप यातुधान हैं। विश्वामित्र के एक भक्त ने मुझसे कहा कि वशिष्ठ के सामने जाकर उन्हें 'यातुधान' कहो तो तुम्हें यज्ञ अवशिष्ट सोम रस पान कराया जायगा। मैं चला आया।

वशिष्ट—(**क्रोध से कुश जल हाथ में लेकर**) सुनो, मेरे आदि गोत्रज वशिष्ठ पर किसी ने दोष लगाया था। उस समय उन्होंने जो उत्तर दिया वह सुनाता हूँ किन्तु उसका फल तुमको भोगना पड़ेगा।

आगन्तुक—क्या फल महाराज ? ऐसा न कीजिये। (**हाथ जोड़ता है**)।

वशिष्ठ—*यदि मैं वशिष्ठ यातुधान (**राक्षस**) हूँ तो आज ही मर जाऊँ। यदि मैंने राक्षस होकर हिंसा की हो तो भी आज ही मर जाऊँ। यदि ऐसा नहीं हूँ तो जो दुर्जन मुझे यातुधान कहता है उसके दश पुत्रों का नाश हो।

आगन्तुक—(**हाथ जोड़कर पैरों पर गिरता हुआ**) क्षमा कीजिये। मुझे तो उन दुष्टों ने बहकाया है। मैं नहीं जानता था। क्षमा कीजिये।

(मंत्र के प्रभाव से एक शक्ति सी निकलती है और विश्वामित्र गोत्र की तरफ़ चली जाती है।)

शाप व्यर्थ नहीं हो सकता। इसका फल तुमको भोगना पड़ेगा। (**आगंतुक गिड़गिड़ाता है। वशिष्ठ का क्रोध धीरे धीरे शान्त होता है। आगंतुक दुखी होकर चला जाता है**)।

एक—देखा तुमने। ऋषि का प्रभाव। अब यह शाप व्यर्थ न होगा।

(एक व्यक्ति का प्रवेश)

***अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायु ततप पूरुषस्य।**
अधा स वीरै र्दशभि र्वियूया यो मा मो घ यातुधाने त्याह

ऋ० ७, १०४, १५

नया व्यक्ति—(वशिष्ठ से) ऋषिवर, शक्ति को न जाने किसने मार डाला है ?

सब—हैं, क्या हुआ, कैसे हुआ ? संभवतः यह भी विश्वामित्र के दलवालों का काम होगा ।

वशिष्ठ—(घबरा कर) कहाँ है शक्ति ?

नया व्यक्ति—यहाँ से पश्चिम दिशा में एक कोस पर वन में महावट के नीचे महाराज !

वशिष्ठ—चलो देखूँ तो । मुझे पहले ही संदेह था । सुदास के यहाँ यज्ञ कराने के फल स्वरूप ही यह अनर्थ हुआ है । न जाने क्यों संघर्ष बढ़ रहा है ? विश्वामित्र के गोत्र से (क्रोध में भरकर) मैं इसका बदला लूँगा—मैं विश्वामित्र के गोत्र का नाश कर दूँगा । (**वशिष्ठ शीघ्रता से लोगों के साथ चले जाते हैं सब लोग थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद**) ।

पहला—बड़ा अनर्थ हो गया । मैं तो उसी समय कह रहा था कि सुदास के यहाँ शक्ति को नहीं जाना चाहिये । देखो, यह विश्वामित्र के दल का काम है हम उनको दण्ड देंगे ।

दूसरा—किन्तु यह भी किसे ज्ञात था कि ऐसा होगा ।

तीसरा—तुम्हें ज्ञात नहीं, यदि वशिष्ठ मंत्र-द्रष्टा हैं तो विश्वामित्र भी कम नहीं हैं । वे भी तो मंत्र-द्रष्टा हैं । इसके अतिरिक्त वे सुदास के पुरोहित हैं । क्या कोई भी पुरोहित यह स्वीकार करेगा कि उसका यजमान दूसरे से यज्ञ करावे । मुझे तो भाई, यह विश्वामित्र के दलवालों का ही कार्य कार्य देख पड़ता है ।

चौथा—तुम विश्वामित्र को ही क्यों दोष देते हो ? पाशद्युम्न का भी तो यह काम हो सकता है । निश्चय है कि पाशद्युम्न के यज्ञ में सोम पान करते हुए इन्द्र को मंत्र-द्वारा बुलाना अनुचित ही हुआ है ।

(अरुन्धती का प्रवेश)

माता, शक्ति का समाचार तुमने सुना !

अरुन्धती— हाँ, सब सुन चुकी हूँ। मैंने पहले ही सुदास के यहाँ यज्ञ में शक्ति के पुरोहित बनने का विरोध किया था। पर कोई सुने तब न ? वशिष्ठ ने स्वयं शक्ति को उत्साहित करके भेजा। जो भी हो मैंने उस कार्य का उस समय भी विरोध किया था और अब भी करती हूँ। जो बात सत्य है, अन्याय है उसका विरोध करना चाहिये। मुझे इसका कम दुख नहीं है। (आँसू पोछती हैं)

पहला—माता, तो क्या आप को पुत्र की मृत्यु का कोई शोक नहीं है ?

अरुन्धती—मनुष्य को सदा न्याय का पक्ष पालन करना चाहिये। हम लोग वैदिक हैं। यदि हम अन्याय पथ पर चलेंगे तो हमारी संतान की क्या अवस्था होगी विध्रुव ?

पहला—किन्तु मैं विश्वामित्र के दल वालों को दण्ड अवश्य दूँगा।
(जाता है)

(शश्वती का प्रवेश)

शश्वती—आर्यों का गौरव इसी में है कि न्याय का पालन करें। मैं अभी वशिष्ठ से शक्ति के सम्बन्ध में सुनकर आई हूँ। मैंने वशिष्ठ से कहा कि आपने एक पुरोहित के होते शक्ति को पुरोहित बना कर भेजा ही क्यों ?

अरुन्धती—यही तो मैं भी कह रही हूँ बहन ?

शश्वती—आज मैंने मनु से कहा है कि वे इस सम्बन्ध में नियम बनावें। यह संघर्ष ठीक नहीं है। इसमें आर्यों की ही हानि है। इस समय हमारे सामने आर्यों की रक्षा का ही केवल प्रश्न नहीं है समाज के निर्माण का भी प्रश्न है। सुख समाचार यह है कि शक्ति को साधारण चोट आई है।

अरुन्धती—(हर्ष से) यह अच्छा हुआ। हाँ, ठीक है बिना नियम के हम लोग रह ही नहीं सकते।

चौथा—तो, जो कुछ वेद बताते हैं वैसा क्यों नहीं करते ?

दूसरा—अरे, वेदों में तो संक्षेप रूप से सभी कुछ है विस्तार तो हमी को करना होगा।

अरुन्धती—मेरा शक्ति...हाँ, वेदों ने कहा 'एक साथ मिलकर चलो, एकसा विचार करो, एक प्रकार के मन बनाओ जिसमें संघर्ष न हो।'

शश्वती—ये तो विधान हैं जब इनका भंग होगा तब विशेष नियम बनेंगे।

तीसरा—जैसे।

अरुन्धती—जैसे रोगों को लो। हमको साधारणतया जीवन के साथ स्वास्थ्य प्राप्त हुआ है, रोग नहीं मिले। रोगों की उत्पत्ति स्वास्थ्य के नियमों का ठीक न पालन करने से होती है। ऐसी अवस्था में रोग जीवन के नियमों में व्यवधान की क्रिया है।

शश्वती—हमें उन व्यवधानों को दूर करना होगा। व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि रोग न हों। तुमने आज एक बात सुनी बहन ?

अरुन्धती—क्या !

पहला—क्या कोई नया समाचार है ?

शश्वती—वह अपाला देवी हैं न ! उनका रोग दूर हो गया ?

अरुन्धती—(आश्चर्य से) कैसे कैसे ? वह तो विचारी बहुत दुखी थीं। उस दिन नदी-तट पर मैंने उन्हें देखा तो मुझे उनकी अवस्था से बड़ा दुख हुआ। उनके पति ने भी तो उनको त्याग दिया था ?

शश्वती—हाँ, पति क्या करते। त्यागा तो नहीं था वे स्वयं दुखी होकर अपने पिता के घर चली आई थीं।

अरुन्धती—तो क्या पति ने उनको नहीं छोड़ा था ?

शश्वती—नहीं, तुम तो जानती हो। निरपराध स्त्री का त्याग आर्यों का नियम नहीं है। उस दिन मनु के पास अपाला और उनके पति पहुँचे तो अपाला के रोग को देखकर, मनु ने कहा—'तुम दोनों पृथक् रहो। कहीं ऐसा न हो कि यह रोग फैल कर संतति को दुख दे।' बस, उसी दिन से अपाला पिता के घर आकर रहने लगीं।

अरुन्धती—अपाला स्वयं क्या कम विदुषी हैं। इस समय जो मंत्रद्रष्टा ऋषि कन्याएँ हैं उनमें ज्ञान की दृष्टि से वे किसी से कम नहीं हैं। उस दिन विश्वावारा, लोपामुद्रा और रोमशा के साथ उनका शास्त्रार्थ सुन कर मैं तो मुग्ध हो गई। अच्छा भला, उनका रोग किस तरह दूर हुआ?

शश्वती—निराहार रहने एवं केवल सोमपान से। पाँच दिन हुए रोग से अत्यन्त पीड़ित होने पर वे चुपचाप नदी तट पर चली गईं। वहाँ सोमपान करती इन्द्र का आराधन करने लगीं। एक दिन स्वयं इन्द्र आ गये अपाला को दाँतों से सोमवल्ली को चबाते देखकर पूछा—क्या चबाती हो? अपाला ने इन्द्र को न पहचान कर कहा—सोमवल्ली!

इन्द्र जब जाने लगे तब अपाला ने पूछा—क्या तुम भी सोमवल्ली का पान करोगे?—इन्द्र ने हँस कर स्वीकृति दी। तब अपाला ने बहुत सी सोमवल्ली लता का रस निकाल कर इन्द्र को पिलाया। इन्द्र रस पीकर प्रसन्न हुए और बोले—क्या चाहती हो? इस पर उन्होंने तीन वर माँगे। आहा बहन, अपाला देवी कितनी बुद्धिमती निकलीं।

अरुन्धती—क्या क्या थे वे वर?

तीसरा—देखा, बुद्धिमान् कैसे काम निकालते हैं?

शश्वती—एक तो यह था कि मेरे पिता के सिर की गंज ठीक हो जाय। दूसरा यह कि उनके ऊपर क्षेत्र उर्वर हो जायँ। तीसरा यह कि मेरा चर्म रोग दूर होजाय।

अरुन्धती—अच्छा तो क्या सब ठीक हो गया ?

शश्वती—हाँ, इन्द्र ने अपने रथ के छिद्र से उनके शरीर को तीन वार खींचा । इससे उनके शरीर का चर्म छिल गया । त्वचा के टुकड़े टूट टूट कर गिरने लगे । तीसरी बार में उनका औषध द्वारा शरीर ठीक हो गया ।

सब – वाह भाई वाह ? रथ छिद्र में कोई औषध होगी ।

अरुन्धती —इंद्र के पास अमृत रहता है ? वही लगाकर और मलकर उनके शरीर का चर्म रथछिद्र से छील दिया होगा ।

शश्वती—जानती हो उस चमड़े से क्या हुआ ।

अरुन्धती—नहीं ! क्या उनके चर्म से भी कुछ बना ?

शश्वती—हाँ, उनके चर्म-शकल पृथ्वी पर गिरते ही दो प्रकार के कीट उत्पन्न हो गये ।

सब—अच्छा, क्या थे वे ?

शश्वती—एक कैंकड़ा और दूसरी गोह । अब वे अपने घर पर हैं । सुन्दर, स्वस्थ, सुरूप । अत्रि ने उनके पति को सूचना भेज दी है । वे आ ही रहे होंगे ।

अरुन्धती—चलो अच्छा हुआ । उनका दुख देख कर तो रोमांच हो आता था ?

शश्वती—ऐसी सुन्दर होगई हैं जैसे सोलह वर्ष की हों ।

अरुन्धती—तुम क्या कम सुन्दरी हो । तुम भी तो सहस्रों में एक हो ?

शश्वती—(**स्मय करती हुई**) चलो हटो, तुम्हें यह क्या सूझा है ?

अरुन्धती—नहीं सचमुच, क्या तुम विवाह न करोगी ?

शश्वती—नहीं अभी तो इच्छा नहीं है । होते ही मुझे रोक भी कौन सकता है । मैं आजकल समाज-शास्त्र का चिंतन कर रही हूँ ।

अरुन्धती—समाज-शास्त्र ! यह कौन सा शास्त्र है ?

शश्वती—वह शास्त्र जिसमें हमारे समाज की व्यवस्था हो ! मैं और इडा दोनों यही सोचती रहती हैं। ऋषि मनु ने हमको यह कार्य सौंपा है। मार्ग भी उन्होंने ही बताया है ?

तीसरा—(दूसरे से) लो सुनो। देखा तुमने ?

दूसरा—हाँ सुनता तो हूँ ही, देख भी रहा हूँ।

पहला—तुम न सुनते हो न देख ही सकते हो ! मैं कहता हूँ तुममें कुछ भी बुद्धि है। ये स्त्रियाँ हमारे लिये व्यवस्था तथा हमारे समाज का निर्माण करती हैं और तुम पौंगा बने देखते रहते हो।

दूसरा—तो तुमने कौन-से युद्ध जीत लिये।

शश्वती—हम लोग युद्ध को रोकना चाहती हैं जिससे युद्ध न हो। सब लोग सुख-शांति से रह सकें। देखो न, हमारी बनाई हुई व्यवस्था हो जाती तो आज शक्ति का यह समाचार न सुनना पड़ता ?

अरुन्धती—मेरा विश्वास है देवता तुम्हारी सहायता अवश्य करेंगे।

शश्वती—मैं जीवन में पहले विश्वास करती हूँ देवता में पीछे।

अरुन्धती—और मैं देवता में प्रथम और जीवन में पीछे।

(श्रद्धा और इडा का प्रवेश)

श्रद्धा—और मैं दोनों में विश्वास करती हूँ।

इडा—तुम सब भ्रम में हो। मैं अपने में विश्वास करती हूँ। क्योंकि मुझसे पृथक कुछ भी नहीं है। हाँ, मैं तुम्हें यह समाचार देने आई थी कि पिता एक महान् यज्ञ कर रहे हैं।

अरुन्धती—यज्ञ ! यज्ञ तो अच्छी बात है इडा।

शश्वती—बहन, यही तो आर्यों का एक पवित्र पर्व है जिसमें सब दूर और निकट के लोग सम्मिलित हो सकते हैं।

इडा—पिता ने यज्ञ की वेदी के नियम, ब्रह्मा, होता, ऋत्विक् आदि की व्यवस्था भी की है। वे सब प्रक्रियायें इसी समय निर्णीत होंगी।

शश्वती—सामाजिक विधानों के सम्बन्ध में भी इसी अवसर पर कुछ निर्णय होना चाहिये इडा ?

अरुन्धती—तुम धन्य हो बहन। मैं आते ही वशिष्ठ को तुम्हारा संदेश दूँगी। भला, यज्ञ कब प्रारम्भ होगा ? क्या सब गोत्र गुरु सम्मिलित होंगे ?

इडा—इस रविवार को। हाँ, सभी को मैं निमन्त्रण दे रही हूँ। यही पिता की आज्ञा है।

सब—हम भी यज्ञ में सम्मिलित होंगे।

इडा—अवश्य। आप सब स्त्री-पुरुषों, बालकों, युवा, वृद्धों को निमन्त्रण है।

(वशिष्ठ का शक्ति के साथ प्रवेश। सब का हर्ष प्रकाश)।

अरुन्धती—**(शक्ति माता को प्रणाम करता है। माँ उसका सिर सूँघती है)** आगये पुत्र ? न जाने किसने तुम्हारे सम्बन्ध में मिथ्यापवाद फैला दिया ?

शक्ति—हाँ माता।

वशिष्ठ—मिथ्यापवाद नहीं, एक तरह सत्य ही था।

सब—यह ईश्वर की कृपा है कि शक्ति सकुशल लौट आये। **(हर्ष प्रकाश)**

वशिष्ठ—वस्तुतः वही विश्वामित्र के दल का व्यक्ति था उसीने शक्ति को मारा था। वह तो शक्ति को अधमरा करके छोड़ गया था। किन्तु मेरे पहुँचने के पूर्व ही श्यावाश्व ने सोमपान तथा औषध प्रयोग द्वारा इसे स्वस्थ कर दिया था। **(शक्ति निर्बलता के कारण थका सा देख पड़ता है)**

अरुन्धती—अच्छा बहन, मुझे अभी शक्ति की देखभाल करनी है।

वशिष्ठ—तुम इडा, शश्वती ? कोई समाचार है ?

अरुन्धती—हमको भीतर चलना चाहिये वशिष्ठ। मैं सब समाचार तुम्हें सुना दूँगी। चलो। **(सब चले जाते हैं)**

चौथा दृश्य

[* मनु का आश्रम—यज्ञ की वेदी के चारों ओर मंत्रद्रष्टा ऋषि, ऋषिकाएँ तथा आर्य स्त्री पुरुष एकत्रित हैं। कोई कुशासन पर, कोई मृगछाला पर, कोई जटिल, कोई मुण्डित, कोई वल्कल वस्त्र पहने, कोई किसी वेश में हैं। सबके मुख पर वीरता का तेज है। आत्मदर्प, आत्मविश्वास अवस्था को ढके हुए है। जो मनुष्य बैठे हैं उनमें मुख्य ये हैं—मनु, कण्व, भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य, अंगिरा, वामदेव, गृत्समद आदि। स्त्रियों में लोपामुद्रा, अपाला, घोषा, विश्ववारा, शश्वती, इडा, यमी, वाक्, श्रद्धा, अरुन्धती आदि। इनके पीछे ऋषियों के पुत्र और ऋषि-पत्नियाँ।

यज्ञ की वेदी को वंदनवारों से सजाया गया है। पास ही ऋषियों के बालक-बालिकाएँ खेल रहे हैं, जो कभी-कभी दिखाई पड़ जाते हैं, केवल नेपथ्य से उनकी आवाज़ आती है। इधर यज्ञ की वेदी की अन्तिम आहुति के साथ यज्ञ समाप्त होता है। जब सब बैठ जाते हैं।]

मनु—(उठकर) बन्धुओ ! इस यज्ञ में आपने देखा होगा कि मैंने कुण्डों की विधि और बैठने का क्रम निर्धारित किया है। ब्रह्मा, उद्गाता, अध्वर्यु और

---

* इस दृश्य के प्रारंभ से पूर्व, जब कि यवनिका उठेगी 'स्वाहा, स्वाहा, स्वाहा, स्वाहा' की ठहर ठहर कर ध्वनि आती रहेगी। कुछ लोग मंत्र भी पढ़ते रहेंगे। लगभग पाँच मिनिट तक इधर इस प्रकार की ध्वनि होती रहेगी, जिसमें स्त्री-पुरुषों की ध्वनि सम्मिलित होगी। पर्दे के प्रारंभ में लोग अपनी-अपनी मृगछाला कुशासन लेकर बैठते दिखाई देंगे। स्त्रियाँ पूर्व की ओर पंक्ति बाँधे, दक्षिण और उत्तर की ओर ऋषि लोग। पश्चिम का भाग खुला।

होता। इस प्रकार यज्ञ का क्रम बाँधा गया है। यज्ञ आर्यों का प्रधान धर्मकार्य है। इससे न केवल देवता ही प्रसन्न होते हैं, हम लोग भी संगठित होते हैं। जो प्रातः सायंकाल हम यज्ञ करते हैं उसके अतिरिक्त हमको ऋतुओं के अनुसार नैमित्तिक यज्ञ भी करने होंगे जिसमें संपूर्ण गोत्र के व्यक्ति एकत्र हो सकें। (**बैठ जाते हैं**)।

अत्रि—यज्ञ की यह प्रक्रिया ठीक है किन्तु वह संगठनात्मक किस तरह है। यह मेरी बुद्धि में नहीं आया।

इडा—नैमित्तिक यज्ञों के द्वारा आर्य लोग एकत्र होंगे तो उनको यज्ञ के पश्चात् अपनी परिस्थिति पर विचार करने का अवसर मिलेगा।

वशिष्ठ—तो क्या ये यज्ञ प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक होंगे ?

मनु—हाँ, जो कर सकें।

वशिष्ठ—दक्षिणा कौन देगा ?

भृगु—जो यज्ञ करावेगा।

वशिष्ठ—हम लोगों का इतना सामर्थ्य कहाँ कि नैमित्तिक यज्ञ करें।

मनु—इसके लिये हमको जाति में भेद बनाना होगा।

सब—(आश्चर्य से) भेद, भेद क्या होगा ?

मनु—आपको ज्ञात है, हमको न केवल यज्ञ ही करना है समाज का निर्माण भी करना है। समाज के निर्माण के लिये वेदों के बताए हुए मार्ग के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के वर्गों की व्यवस्था करनी होगी।

सब—आश्चर्य है।

मनु—ब्राह्मण यज्ञ करावेंगे, वैदिक पद्धति का प्रचार करेंगे और यज्ञ की दक्षिणा द्वारा अपना निर्वाह करेंगे। क्षत्रिय देश की रक्षा करेंगे। ब्राह्मणों द्वारा संपादित यज्ञ का प्रचार करेंगे।

विश्वामित्र—और वैश्य ?

मनु—वे व्यवसाय की उन्नति करेंगे। गायों की रक्षा, गृह-निर्माण, क्षेत्र-वृद्धि तथा शूद्र सबका कार्य करेंगे। इस समय भी सुदास आदि यज्ञ प्रेमी हैं।

विश्वामित्र—इनमें सबसे ऊँचे ब्राह्मण होंगे ?

मनु—सभी अपने-अपने कर्म में ऊँचे होंगे।

वशिष्ठ—पर मर्यादा में तो ब्राह्मण ही ऊँचे होंगे न ? यह तो स्वभावसिद्ध है।

मनु—हमको जहाँ ब्राह्मणों की आवश्यकता है वहाँ क्षत्रियों की भी। वैश्यों और शूद्रों की भी। ऋषि विश्वामित्र किसी समय क्षत्रियत्व को श्रेष्ठ समझते थे।

विश्वामित्र—किन्तु अब तो मैं ब्राह्मण हूँ।

मनु—आपको ब्राह्मण होने से कौन रोकता है। मैं तो समाज की व्यवस्था के सम्बन्ध में कह रहा हूँ।

सब—किसी को भी क्षत्रिय, वैश्य बनना स्वीकार न होगा। हम ब्राह्मणत्व को छोड़ नहीं सकते।

इडा—तब हम जीवित नहीं रह सकते।

शश्वती—मैं आपसे निवेदन करना चाहती हूँ कि आर्यों पर शीघ्र ही भयंकर संकट आनेवाला है। दास दानवों, राक्षसों से मिल गये हैं। वे हमको यहाँ से हटाने का उद्योग बड़ी तत्परता से कर रहे हैं।

श्रद्धा—यज्ञ करो। यज्ञ से देवता प्रसन्न होकर हमारी रक्षा करेंगे।

सब—ठीक तो है। हम लोगों को यज्ञ का प्रचार करना चाहिये। श्रद्धा ठीक कहती हैं।

अरुन्धती—'यज्ञेन यज्ञमयजंत देवाः तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।' देवताओं ने भी यज्ञ ही किये यही पूर्व धर्म था।

वशिष्ठ—हम मंत्रों द्वारा शत्रुओं का नाश करेंगे।

अत्रि—देवता प्रसन्न होकर हमको बल देते हैं। उसका प्रयोग तो हमको करना ही होगा।

कण्व—जिस प्रकार सूर्य अंधकार का नाश करते हैं उसी प्रकार वेद द्वारा प्राप्त शक्ति से हम राक्षसों का नाश कर देंगे।

अगस्त्य—वर्ण व्यवस्था वेद प्रतिपादित होती हुई भी किसी के लिये बन्धन नहीं हो सकती। प्रत्येक व्यक्ति मोक्ष चाहता है। मोक्ष का अधिकारी केवल ब्राह्मण है फिर कौन क्षत्रिय, वैश्य होना स्वीकार करेगा?

अंगिरा—किन्तु सबके चाहने पर भी सब व्यक्ति ब्राह्मणत्व को प्राप्त नहीं कर सकते। जिसमें बौद्धिक विकास, आत्मिक चमत्कार अधिक होगा वही ब्राह्मण बनेगा न?

वामदेव—मैं आत्मा को ही नहीं मानता। बुद्धि पर विश्वास करता हूँ।

गृत्समद—(हँसकर) तुम तो गर्भ से ही नहीं निकलना चाहते थे। तुम्हारी तो बात ही विचित्र है वामदेव।

अपाला—यह व्यक्तिगत आक्षेप है।

घोषा—किन्तु यह कोई बुरी बात नहीं है।

विश्ववारा—मूल वस्तु पर विचार होना चाहिये।

मनु—आप लोग ठीक कह रहे हैं। मेरा सोचना व्यर्थ है। समय अपने आप व्यवस्था का निर्माण करेगा। और वह व्यवस्था हमारे एक बार पतन के पश्चात् होगी, ऐसा मुझे प्रतीत होता है।

सब—पतन के पश्चात्? यह क्या कहा आपने?

मनु—वह समय दूर नहीं है जब आपको बाध्य होकर यह स्वीकार करना पड़ेगा।

इडा—शत्रु से आहत, पराजित होकर।

श्रद्धा—हम लोग यज्ञ करेंगे तो यह कैसे संभव है!

अरुन्धती—देवता हमारी रक्षा करें।

वशिष्ठ—हम तो समझते थे इस यज्ञ में दक्षिणा के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था होगी कि किस पुरोहित को कितनी दक्षिणा मिले।

शक्ति—निर्णय उसी बात का होना चाहिये।

विश्वामित्र—लोभी व्यक्ति ब्राह्मण नहीं हो सकते।

वशिष्ठ—मृगया कर के जीवन यापन करने वाले भी।

शक्ति—हत्यारों को कभी किसी ने ब्राह्मण बनाया है।

विश्वामित्र—जिसकी आत्मा उन्नत नहीं, जो लोभी है, जो दक्षिणा के लिये दूसरे के मंडप में जाकर यज्ञ करा सकता है उसकी हत्या करने में पाप नहीं है।

शक्ति—चुप रहो।

विश्वामित्र—नर पशु ?

वशिष्ठ—(उठकर) तुमने मेरे पुत्र की हत्या कराने का यत्न किया। तुम ब्राह्मण नहीं हो सकते।

विश्वामित्र—तुम क्रोधी हो। तुमने शाप देकर मेरे वर्ग के एक मनुष्य के दश पुत्रों को मार दिया। तुम ब्राह्मण कैसे ? क्रोधी ब्राह्मण नहीं हो सकते। तुम यातु...।

वशिष्ठ—देखो चुप रहो। नहीं तो इसका फल भोगना होगा

मनु—(हाथ जोड़कर) यह व्यक्तिगत राग-द्वेष का समय नहीं है। इस समय हमें दासों, दानवों से युद्ध के लिये उद्यत रहना चाहिये। यदि आप लोगों को यह व्यवस्था स्वीकार नहीं है तो मुझे कुछ भी नहीं कहना।

कुछ—सर्वथा स्वीकार नहीं है मनु। और कोई बात कहो।

वामदेव—यह स्वाभाविक बात है कि जब तक किसी वस्तु की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती तब तक उसके अच्छे होते हुए भी उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

अगस्त्य—इसमें कोई संदेह नहीं कि मनु की यह व्यवस्था उचित है।

विश्वावारा—तो स्वीकार क्यों नहीं करते ?

अगस्त्य—अभी आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई पुत्रि ? आवश्यकता होते ही वह स्वीकार्य होगी। मैं स्पष्ट देख रहा हूँ। यदि यह सब लोग स्वीकार कर लें तो भी उसका महत्त्व तो समय पर ही प्रतीत होगा।

मनु—आप सत्य कहते हैं ऋषिवर !

अत्रि—समय आने पर ही केवल यज्ञ को प्रधान मानकर व्यवस्था को भंग करनेवाले आर्यों को इसकी आवश्यकता होगी। तभी उसका महत्त्व प्रतीत होगा।

इडा—यह तो जान-बूझकर अग्नि में गिरना हुआ। मान लीजिये अभी शत्रु हम सब पर आक्रमण कर दे तो हम किस प्रकार अपनी रक्षा करेंगे ?

एक—जैसे अब तक करते आये हैं। अब तक ही हम कौन दासों से पराजित हुए हैं जो आज होंगे।

दूसरा—दास हमारे सामने कभी लड़े भी हैं जो अब लड़ेंगे ?

तीसरा—वे तो आर्यों की सेवा के लिए हैं।

एक—हम अपनी रक्षा आप करेंगे आप चिन्ता न कीजिये।

अरुन्धती—देवता हमारी रक्षा करेंगे मनु ? तुम चिन्ता क्यों करते हो।

श्रद्धा—न जाने क्यों मनु जीवन को प्राप्त ढंग से नहीं बिताना चाहते। देख लिया इडा शश्वती, अपनी बुद्धि का फल ? चलो अब भी कुछ नहीं हुआ है। हाँ, यज्ञ की बातें मुझे अच्छी लगीं।

अरुन्धती—मुझे भी बहन ?

(बालक कोलाहल करते आते हैं। दैत्य, राक्षस, दानव, दस्यु आ रहे हैं। सब आश्चर्य चकित हो जाते हैं। अपनी अपनी मृगछालायें संभालकर खड़े हो जाते

हैं। इतने में एक बाण आकर एक व्यक्ति के लगता है वह 'हाय' करके गिर जाता है। सब लोग 'चलो युद्ध करें, चलो युद्ध करें' कहते हुए दौड़ पड़ते हैं। राक्षसों, दानवों, दस्युओं से युद्ध होता है ? आश्रम रिक्त हो जाता है। नेपथ्य से हाय हाय, मारो, काटो तथा अट्टहास का दृश्य सुनाई देता है। अँधेरा छा जाता है। कभी स्त्रियों की आवाज़ आती है। कभी पुरुषों के चीत्कार, कभी बालकों के स्वर। गायों के भागने की पदध्वनि। क्षेत्रों का चट चट करके जलने का स्वर। भागो, दौड़ो, चलो। अरे तुम कहाँ हो। वशिष्ठ, तुम कहाँ हो ? देवता तुम्हारी रक्षा करें। मनु तुम कहाँ हो ? देवता तुम्हारी रक्षा करें। आदि मिश्रित भिन्न भिन्न स्वर सुनाई पड़ते हैं। इसी गड़बड़ी से मनु के दश पुत्र युद्ध सामग्री से सन्नद्ध होकर आते हैं)।

मनु के पुत्र—पिता हम लोग युद्ध करेंगे। हम इस प्रकार आर्यों का विनाश नहीं देख सकते। हमें आज्ञा दीजिये। आपने हमें युद्ध की शिक्षा दी है। हम युद्ध करेंगे।

कुछ लोग—हमको युद्ध की आज्ञा दीजिए।

मनु—हाँ, पुत्रो, जाओ। शत्रु का आक्रमण मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

(नेपथ्य में लोग भागते दिखाई पड़ते हैं। गायें जा रही हैं। बालक, वृद्ध, युवा, युवतियाँ दौड़ रहे हैं। कुछ चलते चलते गिर जाते हैं। फिर उठकर चलने लगते हैं। चीत्कार, कोलाहल, अट्टहास फिर मार काट की ध्वनि सुनाई दे रही है। कभी राक्षसों और कभी दस्युओं के युद्ध की आवाज़। बड़ी देर तक नेपथ्य में गड़बड़ी रहती है। कुछ लोग रंगभूमि से भागते, कुछ क्षत-विक्षत देख पड़ते हैं। उसी समय पर्दा गिरता है)।

पाँचवाँ दृश्य

(दो मास के पश्चात्)

[वासुकि, चिन्न तथा अन्य कई दस्यु कुछ राक्षसों के साथ चंद्रमा की किरणों से प्रकाशित नदी के किनारे बैठे हैं। बालू रेत के कण उस प्रकाश में चमचमा रहे हैं। दो ओर मनुष्य की मज्जा से दीप्त दो बड़ी मशालें जल रही हैं। सबके सामने मद कादम्ब रखे हैं। पत्र-पुटों में लोग मदिरा ढालकर पी रहे हैं। सामने कुछ नर्तकियाँ नाच रही हैं। वे कभी दस्युओं और कभी राक्षसों को मद पिलाती हैं। नृत्य नहीं नृत्त है जिसमें गायन नहीं है। केवल भाव-भंगी है मद, कटाक्ष-विक्षेप, हस्त-चालन, पद-गति; कभी कभी मशालची मशालें उनके सामने कर देते हैं। कभी मशालची मद पीने लगते हैं। स्त्रियाँ बैठ जाती हैं। हाँ, नर्तन के साथ साथ वंशी भी बजती है। कुछ लोग मनुष्य कपाल लेकर डण्डों से उनमें स्वर निकालते हैं। कुछ हाथों की तालियों द्वारा अपनी मस्ती तथा पद गति से ध्वनि मिला रहे हैं। धीरे धीरे सब शांत हो जाता है। केवल वासुकि और चिन्न सचेत हैं तथा कुछ दस्यु लोग भी।]

वासुकि—अन्त में हमारा प्रयत्न सफल हो ही गया। आर्यों को हमने इस भूमि से निकाल दिया। हमने कितने आर्यों को बंदी किया होगा चिन्न!

चिन्न—लगभग पचास स्त्री पुरुष। शेष भाग गये।

वासुकि—आज मैं कितना प्रसन्न हूँ भाई कि मेरे देश से आर्य लोग निकल गये।

चिन्न—निकल गये या निकाल दिये गये?

वासुकि—वही आशय है। किन्तु इन राक्षसों का भी विश्वास नहीं है।

चिन्न—इसकी तुम चिन्ता मत करो। इन लोगों का ध्येय किसी भूमि पर अधिकार जमाना नहीं है। इनको तो भोजन चाहिये।

एक—भोजन और स्त्री के अतिरिक्त ये किसी की चिन्ता नहीं करते।

वासुकि—(अपने कुछ व्यक्तियों से) तुम इनको उठा कर नदी के तट पर लिटा आओ। (**सब उठा उठा कर ले जाते हैं**) कितनी सुन्दर रात्रि है चिन्न ?

चिन्न—हमारे देश की तरह सुमधुर।

वासुकि—हमको अपनी सेना सदा तैयार रखनी होगी। मेरा विश्वास है आर्य फिर इस भूमि पर आक्रमण करेंगे।

चिन्न—इतनी शीघ्रता से नहीं। इस समय सिन्धु नद बहुत चढ़ा हुआ है। वे वर्षा ऋतु भर इधर नहीं आ सकते। फिर भी हम लोग सशस्त्र उनसे युद्ध करने को उद्यत रहेंगे। मैंने प्रबन्ध कर लिया है। दो सहस्र दस्यु सिन्धु के इस तट पर रहेंगे। वे आवश्यकता पड़ने पर न केवल युद्ध ही करेंगे हमको सूचना भी देंगे। उस समय हम लोग इन राक्षसों की सहायता से उन्हें फिर पराजित कर सकेंगे।

वासुकि—शेष पचास आर्यों को मार क्यों नहीं देते ?

चिन्न—मैं उनको दास बनाऊँगा। इसीलिये उनको तथा उनकी स्त्रियों को जीवित रखा है। मैं स्वयं कुछ आर्य स्त्रियों को अपने लिये रखना चाहता हूँ। उनमें से मैंने कुछ चुन भी ली हैं। सचमुच आर्य-स्त्रियाँ बड़ी सुन्दर होती हैं। कुछ दस्यु-स्त्रियाँ चेतन होकर अँगड़ाई लेती हैं। वासुकि तथा चिन्न उन्हें उठाकर गोद में बिठा लेते हैं। फिर सब लोग मदिरा पीते हैं।

वासुकि—आज कितने आनन्द का दिन है। स्त्रियों को छोड़कर शेष आर्यों को मार देना चाहिये चिन्न ! वे लोग मर भले हो जायँ दास बनना

स्वीकार नहीं करेंगे ।

चिन्न—तब मार दिया जायगा । (जँभाई लेता है)

(कुछ राक्षसों का प्रवेश)

एक—ये, ये क्या हो रहा है ?

दूसरा—आलिंगन ?

तीसरा—मदिरा कहाँ है ?

चौथा—हम लोग तो यहीं थे न ? बाहर कैसे चले गये ?

वासुकि—उड़कर कदाचित् ।

एक—वे आर्य-स्त्रियाँ कहाँ हैं ?

दूसरा—दो मैं लूँगा समझे ।

तीसरा—मैं भी तो । (फिर सब मदिरा पीते हैं)

वासुकि—अवश्य, अवश्य ।

(धीरे-धीरे प्रकाश कम होता है । अंधकार छा जाता है । इसी समय नेपथ्य से सुनाई देता है 'भाग गये ।' 'मारो काटो' पकड़ो, दौड़ो । एक व्यक्ति आकर समाचार देता है कि कुछ आर्य भाग गये । दौड़कर उधर जाते हैं)

राक्षस—भाग गये ?

(चले जाते हैं)

वासुकि—(खड़ा होकर) भाग गये, कैसे भाग गये ? जहाँ हों वहाँ से पकड़कर लाओ । सच ही हम लोग आर्यों की अपेक्षा निर्बल हैं । यदि राक्षसों का सहयोग न होता तो हम किसी तरह भी उन्हें सिन्धु के पार न भगा सकते !

एक—आर्यों से हमारी शत्रुता निभ नहीं सकती वासुकि ?

दूसरा—यह तो राक्षसों के सिर पर चढ़कर बाण चलाना हुआ । भला, हम कब तक अपनी रक्षा कर सकते हैं ?

चिन्न—तो क्या तुम चाहते हो हम लोग इस प्राप्त-विजय को हाथ से चला जाने दें ?

तीसरा—किन्तु युद्ध तो व्यर्थ है चिन्न। हम किसी तरह भी उनसे युद्ध नहीं कर सकते, न हमारे पास वैसे अस्त्र हैं न हम युद्ध-कला ही जानते हैं।

वासुकि—मैंने स्वयं उनके यहाँ रहकर युद्ध-विद्या सीखी है। अब उसी ढंग से मैं दस्युओं को शिक्षा दे रहा हूँ।

(बहुत से आर्यों को पकड़ कर लाना)

वासुकि—**(पास जाकर)** तुम क्यों भागे ? बोलो ? **(बाण से उनकी चिबुक उठाकर)** बोलो ?

एक आर्य—कोई व्यक्ति इस अवस्था में रहना स्वीकार न करेगा इसीलिये।

एक दस्यु—अब ज्ञात हुआ कि दूसरों को दास कहने का क्या फल है ! अब तुमको हमारी सेवा करनी होगी। नहीं तो तुम्हें मार दिया जायगा।

दूसरा आर्य—तो मार दो। हम मरने के लिये उद्यत हैं।

चिन्न—आज सायंकाल तक जो सेवा करना स्वीकार न करें उनको काटकर देवी की बलि दी जायगी। बोलो, तुम्हें स्वीकार है ?

एक—क्या स्वीकार है ?

तीसरा आर्य—मृत्यु।

एक दस्यु—बलि।

पहला आर्य—तुम चाहे जो करो। हम लोग इस अवस्था में जीवित नहीं रहना चाहते।

चिन्न—ले जाओ इनको। आज इनकी बलि दी जायगी। इससे पूर्व इन पर नागों को छोड़ो, फिर बलि दो।

(ले जाते हैं फिर कोलाहल)

चिन्न—बड़े दुष्ट हैं ये लोग। यह कैसा कोलाहल है ?

वासुकि—(सोचकर) क्या बलि देना इन पर अत्याचार नहीं है ? ये लोग तो हमको पकड़कर कभी नहीं मारते !

चिन्न—तो यह इनकी निर्बलता है ? तुम बीच में मत बोलो। मैं एक-एक को दण्ड दूँगा।

वासुकि—अच्छा यही सही। कदाचित् हमारी क्रूरता ही इन्हें भयभीत कर सकेगी।

चिन्न—हाँ। जीवन में हमारा कोई शत्रु है तो ये आर्य। हम अवसर पाकर इनके साथ कोई अच्छा व्यवहार नहीं कर सकते। आज, बहुत दिनों के बाद मेरी इच्छा पूर्ण हुई है वासुकि ?

(कोलाहल मचता है। मारकाट की ध्वनि सुनाई देती है। कुछ लोग उदास से आते हैं)।

वासुकि—क्या हुआ ?

एक व्यक्ति—उन्होंने बड़ा भयंकर काण्ड कर डाला। मार्ग में ही उन्होंने कुछ दस्युओं पर आक्रमण किया। कुछ लड़कर मारे गये, शेष भाग गये।

चिन्न—(क्रोध से) मैं देखता हूँ।

वासुकि—चलो मैं भी चलूँ।

चिन्न—मैं शत्रु के साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करना मूर्खता समझता हूँ वासुकि ?

वासुकि—बात यह है हम लोग द्वेषवश आर्यों को भले ही बुरा समझें, वस्तुतः उनका व्यवहार हमारे प्रति बुरा कभी नहीं हुआ। किन्तु मैंने जो उनसे युद्ध किया वह केवल जाति और देश की स्वतंत्रता के लिये तो ?

दूसरा अंक

पहला दृश्य

(संध्या का समय)

[दृश्य प्रारंभ होते ही—उत्तरापथ से आनेवाले आर्यों का दल स्त्री, पुरुषों, बालकों, वृद्धों का रुरु-मृग के चर्म के वस्त्र पहने देख पड़ता है। विशाल शरीर, उन्नत काय, बड़े बड़े नेत्र, लंबी नासिका, गौर शरीर, मांसल-रक्तपेशियाँ चले जा रहे हैं। पहले चित्र में घाटियाँ देख पड़ती हैं। फिर धीरे धीरे स्थल का भाग। धूप में आकर डेरा डाल देते हैं। सामने नदी, ऊपर हिमाच्छादित पर्वत-मालाएँ दिखाई देती हैं। थोड़ी देर विश्राम करके उठते हैं और आगे बढ़ते हैं। फिर दूसरा दल इसी प्रकार आकर ठहरता है, फिर तीसरा। इतने में जब कि कुछ लोग घाटियों में आते दिखाई देते हैं। दो पुरुष रंगभूमि में सामने आ जाते हैं। उनमें एक का नाम है सुद्युम्न, और दूसरो का शश्वती]।

शश्वती—(दूर से) युवक, तुम कहाँ रहते हो ? तुम्हें मैंने प्रथम बार ही देखा है ?

सुद्युम्न—(मुँह फेरकर) क्या जिसे कभी नहीं देखा, उसे कभी देखा नहीं जा सकता ?

शश्वती—तुमने मुख क्यों फेर लिया युवक, क्या संकोच करते हो ? (पास से) अरे, यह क्या तुम ? यह पुरुष वेश। हा हा हा हा।

सुद्युम्न—हाँ बहन, (अट्टहास करके) मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं पुरुष बनूँ। कोई आपत्ति है क्या ? अब मेरा नाम सुद्युम्न है ।

शश्वती—नहीं, तुम सचमुच पुरुष ज्ञात होती हो इडा ? बहुत सुन्दर युवक लगते हो सुद्युम्न क्या सुन्दर रूप है ।

सुद्युम्न—अन्त में वही हुआ जो मैं कहती थी । हम लोग पराजित हो गये ।

शश्वती—विश्व की सर्व-प्रथम बुद्धिमान् यह आर्य-जाति इतनी अदूरदर्शी होगी इसका मुझे विश्वास नहीं था। (**घाटी की ओर देखकर**) देखो, वे कौन लोग आ रहे हैं ?

सुद्युम्न—(**उधर ही देखकर**) हाँ, कदाचित् आर्यों का कोई दल होगा । इधर हम लोग पराजित होकर पीछे हट रहे हैं । उधर ये लोग आगे बढ़ रहे हैं । इस उपत्यका में इतना स्थान नहीं जहाँ बहुत व्यक्ति टिक सकें । ऊपर पर्वतमाला, सामने नदी, थोड़ी-सी भूमि । कहाँ तक लोग बस सकते हैं ?

शश्वती—मुझे तो दुख इस बात का है कि गोत्र-गुरुओं को मनु की बात न मानने के कारण ही दासों से पराजित होना पड़ा है । स्वयं पिता ने यज्ञ से पूर्व प्रत्येक गोत्र के अधिपति को दासों के षड्यंत्र के संबंध में बताया था ।

सुद्युम्न—मैं इससे उदास नहीं हूँ शश्वती । मैं इन आनेवाले आर्यों के द्वारा वर्षा के पश्चात् युद्धोद्योग करूँगी । मेरे जीवन का ध्येय यही है ।

शश्वती—मैं मनु से मिलना चाहती हूँ। मैं उनसे मिलूँगी । मुझे श्रद्धा का बड़ा दुख है इडा बहन !

इडा—(**आँसू पोंछकर**) माँ को इस पराजय का बहुत दुख हुआ ।

शश्वती—पर यह हुआ कैसे ? क्या हम इतनी दूर आकर भी सुरक्षित नहीं

हैं। देखो, वे लोग आ गये। (**आयों का एक दल आकर विश्राम करता है। शश्वती और इडा छिप जाती हैं**) देखो ये क्या करते हैं ?

एक—कदाचित् इससे पूर्व भी कुछ लोग यहाँ ठहरे हैं।

दूसरा—हाँ, और क्या। किन्तु यह स्थान तो बहुत संकुचित है ? हम लोग यहाँ कैसे रह सकते हैं ?

तीसरा—अरे, इसके आगे ही तो सिन्धु-नद है। उसके पश्चात् स्थल-ही-स्थल है। देखते जाओ। कितना रमणीक स्थान है।

चौथा—मैंने सुना है जैसे ही जैसे हम आगे बढ़ेंगे, वैसे ही इस भूमि की सुन्दरता भी बढ़ती जायगी।

पहला—और क्या ? हमारी जाति के बहुत से लोग वर्षों से इसी दिशा में बढ़ते आ रहे हैं। मैंने प्रजनन वर्ग के व्यक्तियों से कहा था। देखो यहाँ कहीं जल है ? तृषा लग रही है।

दूसरा—भोजन का भी प्रबन्ध करना होगा। यहाँ तो कोई पशु-पक्षी भी नहीं दिखाई देता।

तीसरा—आगे नदी दिखाई देती है चलो तट पर ही क्यों न बैठा जाय।

दूसरा—हाँ, है तो ठीक। चलो चलें। यह तो (**पीछे की ओर देखकर**) देखो, घाटी का मुखद्वार है। यहाँ भला क्या मिलेगा ?

(**सब सामान उठाकर चल देते हैं। सुद्युम्न शश्वती का प्रकट होना**)

सुद्युम्न—आप लोग कहाँ जा रहे हैं ?

एक आर्य—जा रहे हैं इतना जानते हैं। अभी कहीं का निश्चय नहीं। क्योंकि आगे का स्थान अदृष्ट है।

एक स्त्री—तुम कितने सुन्दर हो। तुम्हारा नाम क्या है ? देखो, इसको तृषा लग रही है। यहाँ कहीं जल होगा !

शश्वती—आप लोग आर्य हैं न ? जल इस स्थान से दोघटी के मार्ग पर

मिलेगा ? वहीं सिन्धु नद बह रहा है । वहाँ बहुत से आर्य लोग निवास करते हैं ।

सुद्युम्न—आपको मार्ग में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?

एक आर्य—कष्ट, कैसा कष्ट, न जाने कितने समय से ऐसे ही चल रहे हैं । हम लोगों के वर्ग में तीन सौ व्यक्ति हैं । कुछ आगे निकल गये कुछ पीछे आरहे हैं । चलो भाई, तृषा लग रही है । इस देश में आते ही तृषा भी लगी । बड़ा उष्ण देश है ।

शश्वती—तुम कितनी सुन्दर हो युवती ?

दूसरा—(हँसकर) चलो चलो, हम भी क्या कम सुन्दर हैं । आप लोग क्या यहीं ठहरेंगे देखिये, हमारे गोत्र के अग्रज आ रहे हैं उनसे कह दीजियेगा कि हम लोग सिन्धु-तट पर एकत्र होंगे । तृषा बहुत लग रही है भाई, यदि कष्ट न हो तो आप ही हम लोगों को चलकर वह स्थान बता दीजिये ।

सुद्युम्न—शश्वती, तुम इन्हें ले जाओ । सिन्धु के तट पर ठहराना ।

(चलते-चलते ठहरकर)

युवती—युवक, क्या तुम इसी देश के रहनेवाले हो ?

सुद्युम्न—नहीं, देवी हम लोग भी आर्य हैं ? हम लोग बहुत वर्ष हुए इसी मार्ग से आये थे । आज हम पराजित हैं ?

(सब लौटकर)

सब—पराजित, तुम लोग किससे पराजित हो गये ?

युवती—पराजितों को मैं नहीं चाहती । चलो भाई, चलें ।

सुद्युम्न—इस देश में एक जाति रहती है । उसी ने हमें पराजित किया है ।

एक—किन्तु आर्य तो कभी पराजित हुए हों, ऐसा नहीं सुना, तुम आर्य न होगे । चलो ।

दूसरा—हमको पराजित करनेवाली कोई जाति संसार में है क्या ?

सुद्युम्न—हम आर्य हैं, किन्तु संगठित न होने के कारण पराजित हुए।

तीसरा—तो संगठित क्यों न हुए ?

शश्वती—वह तुम्हें सिन्धु के तट पर आर्यों से ज्ञात होगा।

सब—तो हम लोग आगे न जायँगे। पराजित जाति से मिलना भी अपमान-जनक है। चलो लौट चलें।

शश्वती—यह कायरता है। क्या तुम लोग भयभीत हो गये ?

सब—नहीं, यह बात नहीं है। हमने तो सुना सबसे बुद्धिमान् ऋषि मनु इधर रहते हैं। इसी से हम उधर जा रहे हैं। क्या उन्होंने तुम्हारी कोई सहायता नहीं की ?

शश्वती—आप लोग चलिये, पिता मनु वहीं हैं। तुम भी चलो न सुद्युम्न ?

सुद्युम्न—मुझे एकान्त चाहिये। मैं यहाँ थोड़ी देर बैठूँगा। इसके अतिरिक्त इस समूह के अग्रज को मार्ग दिखाऊँगा। तुम चलो।

(सब चले जाते हैं) ये लोग कितने स्पष्टवादी हैं, वीर भी। अब मेरा ध्येय इन आर्यों की सहायता से फिर आक्रमण करने का है। यह युवती भी कितनी सुन्दर है। कितनी स्पष्ट। हमारे पराजित होने का नाम सुनकर कहने लगी, मैं तुमको नहीं चाहती। **(ऊपर घाटी की ओर देखकर)** कदाचित्—उस दल के लोग आ रहे हैं।

(आगे-आगे एक तेजस्वी पुरुष। उसके पीछे नर-नारी वर्ग चला आ रहा है। सब लोग आकर उसी स्थान पर डेरा डाल देते हैं)।

बुध—**(सुद्युम्न को देखकर)** ऐ भाई, सुनो तो।

सुद्युम्न—**(उस तेजस्वी पुरुष को देखकर मुग्ध-सी होती हुई)** क्या है ?

बुध—इधर आओ, तनिक हमारी बात तो सुनो ?

सुद्युम्न—कहो न ? वहीं से कह दो।

बुध—देखो, मैं कहता हूँ तनिक इधर आओ !

सुद्युम्न—मैं वहाँ नहीं आ सकता।

बुध—ऐसा शब्द तो आज मैं प्रथम बार सुन रहा हूँ।

सुद्युम्न—मैं भी तुम्हारे जैसे उद्धत युवक को प्रथम बार ही देख रहा हूँ।

एक—मूर्ख दिखाई देता है। अरे ये हमारे अग्रज हैं। तुम इनकी आज्ञा न मानोगे तो दण्ड मिलेगा।

सुद्युम्न—तुम्हारे अग्रज हैं, मेरे तो नहीं।

बुध—(**पास जाकर उसके कंधे पर हाथ रखकर**) युवक, तुम जानते हो तुम किससे बातें कर रहे हो ? इसमें संदेह नहीं यह तुम नहीं, तुम्हारा सौन्दर्य है जिसने तुमको इतना उद्धत बना दिया है। सुन्दर युवक, तुम कहाँ रहते हो ?

सुद्युम्न—(**कंधे से हाथ झटककर**) दूर खड़े होकर बातें कीजिये महाशय ?

एक आर्य—आर्य, यह पुरुष बड़ा अभद्र है।

दूसरा—मुझे तो यह पुरुष ही नहीं ज्ञात होता।

तीसरा—अरे भाई, बोलना कोई अपराध है क्या ?

सूनृता—(**आगे बढ़कर**) ओः इतने सुन्दर हो तुम ? आर्य, मैं इनसे विवाह करूँगी।

सुद्युम्न—मैं किसी स्त्री से विवाह नहीं कर सकता।

सूनृता—(**भाई बुध से**) अग्रज, इनको समझाओ। मैं अवश्य इनसे विवाह करूँगी। युवक, देखो, मैं कितनी सुन्दर हूँ। ये मेरे भाई हैं। इस संपूर्ण वर्ग के स्वामी। अग्रज, इन्हें समझाओ।

सुद्युम्न—देवी, मैं तुमसे विवाह नहीं कर सकता।

सूनृता—(**पास जाकर**) क्यों ?

बुध—कितने सुन्दर हो तुम ! अच्छा जाने दो। हम तुम मित्र हैं। यह

बताओ तुम कहाँ रहते हो ?

सुद्युम्न—इस स्थान से कुछ दूर, सिन्धु के तट पर।

बुध—क्या मनु भी वहाँ हैं। हम लोग उनके दर्शन करने जा रहे हैं।

सुद्युम्न—क्यों ?

सूनृता—अरे, तुम इतना भी नहीं जानते। मनु संसार के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं। हम लोग उन्हीं के पास जा रहे हैं।

सुद्युम्न—मनु किस बात में श्रेष्ठ हैं यह मैं नहीं जानता। यहाँ तो सभी मनु हैं।

सूनृता—उन्होंने अग्नि को संसार में प्रकट किया। उन्होंने हम सबको चिन्तन करने का मार्ग दिखाया। विवेक उत्पन्न करके मनुष्य को मनुष्य बनाया।

बुध—इसके अतिरिक्त जब संपूर्ण संसार जलमग्न हो गया था तब उन्होंने मनुष्य-जाति का निर्माण किया। हम सब लोग उन्हीं के द्वारा इतना कुछ सीख सके हैं।

सुद्युम्न—(प्रसन्न होकर) मनु आजकल बहुत चिन्तित हैं। यहाँ के आर्यों ने उनका कहना न माना। दासों, राक्षसों से युद्ध करने के लिए संगठित न हुए इस कारण पराजित हो गये। और पंचनद देश से भगाये जाकर आज वे इस पार फिर लौट आये हैं।

बुध—हाँ, ऐसा। मनु का कहना उन्होंने क्यों न माना ? संगठन ही तो शक्ति है। क्या आगे दास जाति रहती है ?

सुद्युम्न—सिन्धु के उस पार दासों और दानवों के निवास-स्थल हैं।

बुध—किन्तु आर्य मनु उन्हें समझा तो सकते थे ? इस समय मनु कहाँ हैं ?

सुद्युम्न—तप कर रहे हैं।

सूनृता—यह तो बहुत बुरा हुआ अग्रज कि आर्य लोग पराजित होकर सिन्धु के तट पर लौट आये ? आप तो इन आर्यों की बड़ी प्रशंसा करते थे क्या ऐसे आर्यों में हमको रहना होगा ?

बुध—न जाने, यह क्या मेरा भ्रम था। यदि ऐसा है तो मुझे बड़ा दुःख है आर्य ?

सुद्युम्न—किन्तु इससे मुझे कोई दुःख नहीं है जो गिरते हैं वे ही चलना सीखते हैं आर्य !

बुध—यह तो ठीक है।

बुध—सुना, उनके बहुत सी सन्तानों में एक पुत्री इडा है। वह बहुत बुद्धिमती है।

सुद्युम्न—(निःसंकोच होकर) होगी, यदि वह बुद्धिमती होती तो आर्यों को यह पराजय न होती।

बुध—जहाँ संगठन की आवश्यकता हो वहाँ एक बुद्धिमान् ही कुछ नहीं कर सकता। इडा कहाँ हैं ? मैं उनसे मिलूँगा।

सुद्युम्न—इडा तनिक भी समझदार नहीं है।

बुध—किन्तु वह तो बड़ी सुन्दरी है।

सुद्युम्न—मुझे तो ऐसा कभी ज्ञात नहीं हुआ। आप उससे मिलकर क्या करेंगे ?

सूनृता—युवक, क्या सिन्धु-तट के आर्य सब तुम्हारी तरह सुन्दर हैं !

बुध—तुम पहले मेरी बात का उत्तर दो। क्या मैं उनसे मिल सकता हूँ ?

सूनृता—तुम पहले मेरी बात का उत्तर दो युवक ?

बुध—मैंने इडा की बड़ी प्रशंसा सुनी है।

सुद्युम्न—वह बड़ी कर्कशा है। कठोर है। अभद्र है।

बुध—(सोचकर) किन्तु एकबार देखना तो होगा ही।

सूनृता—चलो भाई, चलें। यहाँ से कितनी दूर होगा वह प्रदेश ?

सुद्युम्न—पास ही।

सब—चलिये, आर्य विलंब हो रहा है। प्रातःकाल से कुछ भी भोजन नहीं किया।

(सब चलने की तैयारी करते हैं। केवल सुद्युम्न रह जाता है)

बुध—(सुद्युम्न को देखकर) क्या तुम सिन्धुतट पर नहीं चलोगे ?

सूनृता—चलो न ? देखें, कैसा प्रदेश है।

सुद्युम्न—(बुध से) आपका क्या नाम है ?

बुध—आर्य बुध।

सुद्युम्न—सुन्दर नाम है। क्या आप इडा से मिलना चाहते हैं ?

बुध—हाँ, क्या मैं उस आर्या से मिल सकूँगा ? यदि तुम उनसे मुझे मिला दो तो बड़ी दया हो। (सुद्युम्न के कंधे पर हाथ रख देता है। इडा को रोमांच होता है) हैं, तुम काँप क्यों रहे हो ?

सुद्युम्न—यों ही।

बुध—तुम बहुत सुन्दर हो युवक। मेरी बहन सूनृता से क्यों विवाह नहीं कर लेते ? तुमने विवाह तो अभी नहीं किया है न ?

सुद्युम्न—नहीं। किन्तु मैं अभी किसी से विवाह नहीं कर सकता।

बुध—क्यों, देखो, वह तुम्हें देखते ही प्रेम करने लगी है।

सूनृता—चलिये विलम्ब हो रहा है। आः यह प्रदेश कितना सन्दर है सुन्दर युवक !

बुध—पुरुष भी कम सुन्दर नहीं है। मैंने तुम्हारा ऐसा कोई सुन्दर पुरुष नहीं देखा, तुम्हारा नाम क्या है ?

सुद्युम्न—सुद्युम्न !

बुध—सुद्युम्न।

(सूनृता सतृष्ण नेत्रों से सुद्युम्न को देखती रहती है)

सुद्युम्न—चलो, चलो। रात्रि हो रही है।

(सब चले जाते हैं)

दूसरा दृश्य

(समय प्रातःकाल)

[बुध अपने वर्ग के साथ सिन्धुतट पर । सूनृता उसके साथ है । साधारण मार्ग। दोनों ओर कुटीर बने हैं। लोग आ-जा रहे हैं। दोनों खोये खोये से सब लोगों को देख रहे हैं।]

सूनृता—वे अभी तक नहीं आये। बहुत विलंब हो चुका है।

बुध—आ तो जाना चाहिये। यद्यपि उन्होंने रात्रि को चलते समय मुझ से कहा था कि मैं प्रयत्न करूँगा कि मनु के दर्शन आपको हो जायँ। प्रातःकाल हो चुका। उनके दर्शन नहीं हो रहे हैं।

सूनृता—जब से मैंने सुद्युम्न को देखा है, उन्हें मैं विस्मृत नहीं कर पा रही हूँ भाई।

बुध—न जाने क्या आकर्षण है उस व्यक्ति में। भोला मुख, अंतर्भेदी विशाल नेत्र, मुख से शोभा के साथ ज्ञान जैसे बिखर रहा हो। (एक व्यक्ति को पास से जाते देखकर) आपसे......आपसे एक बात पूछनी है।

व्यक्ति—कहिये।

बुध—आप सुद्युम्न को जानते हैं ?

व्यक्ति—(आश्चर्य से) सुद्युम्न कौन, यहाँ कोई भी सुद्युम्न है ऐसा मुझे ज्ञात नहीं है। (ध्यान से देखकर) आप क्या कल ही उत्तरापथ से पधारे हैं ?

बुध—जी।

व्यक्ति—क्षमा कीजिये, मैं नहीं जानता। (चला जाता है)।

बुध—लोग सुद्युम्न जैसे तेजस्वी युवक को नहीं जानते। आश्चर्य है ?

(एक अन्य व्यक्ति आते हैं आगे बढ़कर)

आर्य, आप सुद्युम्न को जानते हैं ? मैं कल ही उत्तरापथ से आया हूँ। उनसे मिलना चाहता हूँ।

दू० व्यक्ति—अच्छा आप ही उत्तरापथ से पधारे हैं। यह बहुत अच्छा हुआ। प्रातःसवन तो कर लिया होगा ? नहीं किया तो कर लीजिये। मैं अत्रि के गोत्र में रहता हूँ नमस्कार !

बुध—आप सुद्युम्न नाम के किसी व्यक्ति को जानते हैं ?

दू० व्यक्ति—(एक और बालक को बुलाकर) यहाँ कोई सुद्युम्न हों तो इन्हें बता दो। (बुध से) मैं मंत्र-दर्शन के अतिरिक्त कुछ नहीं जानता। (चला जाता है)।

बालक—सुद्युम्न को मैं बुला देता हूँ आप ठहरिये। (दौड़ जाता है)।

बुध—सूनृता, कितने भद्र हैं ये लोग। हम लोग तो इनके सम्मुख असभ्य हैं। यह प्रातःसवन क्या होता है ?

सूनृता—जानती तो मैं भी नहीं।

बुध—(एक व्यक्ति से) प्रातःसवन क्या होता है महाशय ?

व्यक्ति—(आश्चर्य से) आप प्रातःसवन भी नहीं जानते ? आप कहाँ रहते हैं ?

बुध—हम लोग उत्तरापथ से कल आये हैं, कोई तीन सौ व्यक्ति।

व्यक्ति—आप आर्य मनु से मिलिये वे बतावेंगे। हम लोग प्रातःकाल उठ कर जो यज्ञ किया करते हैं उसे प्रातःसवन कहते हैं।

(चला जाता है)

बुध—यज्ञ क्या सूनृता ?

सूनृता—न जाने। कहीं यह धूम तो नहीं। देखती हूँ सब लोग अग्नि जला-कर कुछ बोल रहे हैं। चारों ओर विचित्र दृश्य है भाई। (बालक एक व्यक्ति को लेकर आता है)।

बालक—ये आ गये।

बुध—आपका नाम—नहीं आप नहीं है। ये नहीं है भाई।

आगंतुक—क्या नहीं है?

बुध—आपका नाम सुद्युम्न नहीं है।

आगंतुक—जी। वस्तुतः पहले मेरा कुकल है किंतु मैंने नाम परिवर्त्तन करने का निश्चय कर लिया है। सोचता हूँ प्रद्युम्न रखूँ अथवा सुद्युम्न। यही कल मैंने इस बालक से कहा था। तो आपको मेरा कौन सा नाम ठीक ज्ञात होता है? देखिये, जो आप कहेंगे वही नाम मैं रख लूँगा।

बुध—क्या तुम आर्य हो?

आगंतुक—मैं दस्यु हूँ। मुझे आर्यों के साथ रहना प्रिय है, इसलिये मैं युद्ध के समय इन्हीं के साथ चला आया। हाँ, तो आप क्या निश्चय करते हैं?

बुध—(हँसकर) नहीं आप जाइये।

सूनृता—(बालक से) सुद्युम्न कोई नहीं हैं क्या?

आगंतुक—यदि इससे आपका कोई कार्य सिद्ध होता हो तो मैं सुद्युम्न नाम रख लूँगा। यदि आपको कष्ट न हो तो अवश्य परामर्श दीजिये।

सूनृता—(एक व्यक्ति को जाते देखकर) देखो, वे हैं सुद्युम्न? (मैं बुलाती हूँ। दौड़कर बुलाती है। वह व्यक्ति आता है)। आर्य, आपही सुद्युम्न हैं न?

बुध—(पास जाकर) कहो सुद्युम्न, मैं कल से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ?

सूनृता—(हँसकर) तुम तो आर्य हो न? इतना विलम्ब क्यों कर दिया?

आगंतुक—कैसा विलम्ब।

बुध—कदाचित् सायंकाल के समय उत्तरापथ के द्वार पर हम लोगों का मिलना तो आप भूले न होंगे।

सूनृता—आर्य तो इतनी शीघ्र भूलने वाले नहीं होते।

आगंतुक—महाशय, मुझे क्षमा कीजिये। मैं आपको पहचान नहीं रहा हूँ। कल सायंकाल मैंने आपको नहीं देखा, यह मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ।

बुध—मेरा नाम बुध है।

सूनृता—मेरा नाम सूनृता। हम कल ही उत्तरापथ से यहाँ आये हैं।

आगंतुक—मैं आप दोनों को अभिवादन करता हूँ। मेरा नाम शर्याति है।

सूनृता, बुध—शर्याति, सुद्युम्न कहाँ है ?

शर्याति—मैं सुद्युम्न को नहीं जानता।

सूनृता—आप सुद्युम्न को अवश्य जानते हैं। आप ही की तरह तो हैं वे।

बुध—वस्तुतः आप जैसे।

शर्याति—(**आश्चर्य से**) आपको भ्रम हुआ है। कहीं आपने मेरे किसी भाई को तो नहीं देखा ?

सूनृता—हाँ, हाँ, हो सकता है।

शर्याति—किन्तु सुद्युम्न तो उनमें से किसी का नाम नहीं है। मैं आर्य मनु का पुत्र हूँ।

बुध—मैं आर्य मनु से मिलना चाहता हूँ।

शर्याति—किन्तु वे इस समय समाधिस्थ हैं। आज सायंकाल को मिल सकेंगे।

सूनृता—शर्याति, सुद्युम्न बहुत सुंदर युवक हैं ?

शर्याति—आप कहाँ ठहरे हैं ? मैं सायंकाल आपको पिता मनु से मिला दूँगा। अब आज्ञा दीजिये (**सूनृता को सतृष्ण नेत्रों से देखता है**)।

बुध—(**ध्यान में**) आश्चर्य है लोग सुद्युम्न को नहीं जानते। अस्तु, सायंकाल हम लोग आज मनु से मिलने को उद्यत रहेंगे।

शर्याति—(**जाते जाते लौटकर**) आपका नाम ?

बुध—बुध।

शर्याति—ये क्या आपकी भगिनी हैं ?

सूनृता—इनके पिता ने मेरा पालन-पोषण किया है। मैं इनको अपना भाई मानती हूँ। हम दोनों एक ही गोत्र के हैं।

शर्याति—ठीक है। अच्छा, मैं सायंकाल के समय आऊँगा।

(चला जाता है एक और व्यक्ति का प्रवेश)

व्यक्ति—(उन्हें लौटते देखकर) सुनिये, आपका नाम आर्य बुध है न ?

बुध—(लौट कर) हाँ-हाँ, कहिये।

व्यक्ति—आपको यहाँ किसी प्रकार कष्ट तो नहीं है ?

बुध—नहीं, किसी प्रकार का कष्ट नहीं है। प्रातःकाल होते होते संपूर्ण आवश्यक सामग्री कुछ व्यक्ति आकर रख गये। आपको किसने भेजा है ?

व्यक्ति—इन गोत्रों के व्यक्तियों की आवश्यकताओं का ध्यान मैं रखता हूँ।

(आकृति से सुद्युम्न को पहचान कर)

बुध—क्या आपका नाम मैं पूछ सकता हूँ ?

व्यक्ति—मेरा नाम इक्ष्वाकु है। मैं आर्य मनु का पुत्र हूँ।

सूनृता—आपकी आकृति सुद्युम्न से बहुत मिलती है।

इक्ष्वाकु—सुद्युम्न कौन, मैं उन्हें नहीं जानता। आपको और किसी वस्तु की आवश्यकता तो नहीं है ?

बुध—नहीं। आपकी कृपा है।

(इडा का प्रवेश)

इडा—भाई, आप यहाँ हैं ? क्या आज वर्गों को युद्धकला का ज्ञान नहीं दिया जायगा ?

इक्ष्वाकु—अवश्य ! (बुध से) क्या आपके वर्ग में ऐसे व्यक्ति हैं, जो युद्ध-विद्या सीखना चाहते हों ?

बुध— मैं स्वयं सीखना चाहता हूँ । इसके अतिरिक्त और बहुत से व्यक्ति हैं, जो इस प्रक्रिया में निपुणता प्राप्त करना चाहेंगे । क्यों ऐसी क्या आवश्यकता होगई, हम सभी लोग साधारणतया युद्ध-विद्या जानते हैं ।

इक्ष्वाकु—बात यह है कि इधर अपनी शिथिलता के कारण हम लोग दस्यु, दानवों से पराजित हो गये हैं । इसीलिये सिन्धु के इस पार हमको हटना पड़ा है । अब पूर्ण संगठन के साथ वर्षा के पश्चात् हम लोग शत्रु पर आक्रमण करेंगे । उस कार्य के लिये मैं आर्यों को युद्ध के लिये उद्यत कर रहा हूँ ।

सूनृता—हाँ, यही तो कल आर्य सुद्युम्न ने कहा था ।

इक्ष्वाकु—यह आर्य सुद्युम्न कौन हैं ?

बुध—न जाने, कल सायंकाल के समय एक सज्जन हमको उत्तरापथ की घाटी के बाहर मिले थे वे देखने में आप जैसे ही थे ।

इडा—क्या नाम बताया था उन्होंने ?

बुध—सुद्युम्न । क्या आप जानती हैं सुद्युम्न कौन हैं ?

इक्ष्वाकु—सुद्युम्न को हम लोग नहीं जानते ।

इडा—तो क्या वे कल आपको उत्तरापथ की घाटी के पास मिले थे ?

सूनृता—जी । वे ही तो हम लोगों को लेकर यहाँ आये थे ।

बुध—आश्चर्य है, न जाने वे कौन थे ? **(ध्यान से देखता है इडा से)** आप ही जैसे सचमुच ।

इडा—मैं सुद्युम्न को जानती हूँ । वे प्रातःकाल ही बाहर चले गये हैं । मैं उनको आपके पास भेज दूँगी ।

इक्ष्वाकु—सुद्युम्न कौन हैं इडा बहन ?

इडा—सुद्युम्न एक आर्य हैं आप उन्हें नहीं जानते ।

बुध—मेरी ये बहन उनसे विवाह करना चाहती हैं ।

सूनृता--आपके एक भाई शर्याति भी तो हैं ?

इडा—हाँ, शर्याति बड़ा उद्धत युवक है ।

इक्ष्वाकु—शर्याति बड़ा तेजस्वी है आर्य !

बुध—(इडा से) आपकी मैंने बड़ी ख्याति सुनी थी । (सतृष्ण नेत्रों से देखता है) ।

इडा—आजकल हम लोग युद्धोद्योग में संलग्न हैं आर्य !

बुध—क्या आप आर्य सुद्युम्न को कृपा करके भेज सकेंगी ?

इडा—अवश्य ।

बुध—अनुगृहीत हुआ । यह प्रदेश तो बड़ा सुन्दर है । हम लोग जहाँ से आये हैं, उधर शीत की अधिकता से प्राण निकलते हैं ।

इक्ष्वाकु—सिन्धु के उस पार देखिये । इससे भी सुन्दर प्रदेश है । हम लोग वर्षा के पश्चात् आक्रमण करेंगे ।

बुध—ठीक है । (**सब चले जाते हैं बुध इडा को पुकार कर**) क्या सुद्युम्न आपके साथ न आ सकेंगे ?

इडा—देखिये, मुझे इन दिनों तनिक भी अवकाश नहीं है । मैं चाहती हूँ आप हमें कुछ सहायता दें ?

बुध—मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी यदि मैं आपके किसी काम आ सकूँ ।

इडा—(तेज़ी से) यह मेरा कार्य नहीं है। समस्त आर्यजाति का कार्य है । महाशय, ज्ञात होता है आपको स्त्रियों के साथ व्यवहार करना भी नहीं आता !

बुध—(घबराकर) क्या मैंने कोई अनुचित बात कह दी है ! मुझे क्षमा कीजिये । मैं आपके यहाँ की शिष्टता से अनभिज्ञ हूँ ।

इडा—भविष्य में ध्यान रखिये ।

(**तेजी से चली जाती है**)

बुध—सुद्युम्न ने अनुचित नहीं कहा था ।

तीसरा दृश्य

[समय सायंकाल—सिन्धु के तट पर मनु ध्यान-मग्न अवस्था में। समाधि अभी खुल रही है। विश्वामित्र, वशिष्ठ, इक्ष्वाकु आदि बहुत से व्यक्ति प्रतीक्षा में बैठे हैं। तेजस्वी मनु धीरे धीरे नेत्र खोलकर चारों ओर देख रहे हैं। मनु ऋषियों को देखकर प्रणाम करके]।

मनु—(मुसकराते हुए) वास्तविक शान्ति आत्मा में है। श्रद्धा के बलिदान के बाद मेरा चित्त बहुत कुछ विक्षुब्ध हो गया था। इसीलिये कदाचित् वेद ने नारी को अर्धांगिनी माना है कि वह हृदय, आत्मा और शरीर की सभी चेष्टाओं की संगिनी है।

अत्रि—श्रद्धा का यज्ञ में प्रशंसनीय विश्वास था। उतना यदि हम लोगों का हो जाय तो आत्मिक शान्ति का इससे सुगम मार्ग और नहीं हो सकता आर्य मनु?

वशिष्ठ—आपने आर्य-जाति की रक्षा के लिये जन्म लिया है इसलिये आपका प्रत्येक कार्य परोपकार के लिये है। श्रद्धा का बलिदान भी यज्ञ की दृढ़ता के लिये हुआ है। और तो और उन दुष्ट आकुली और किरात को हम लोग भी न पहचान सके। अन्यथा बलि के लिये सामग्री उपस्थित करते देख हम उनको अवश्य पकड़ लेते?

इक्ष्वाकु—हम लोगों के यज्ञ प्रारंभ करते ही जब वे वेश बदल कर हमारे दासों के रूप में आये तो मैंने उनसे पूछा कि तुम कौन हो? उन्होंने बताया कि हम कृकल और वृष के भाई हैं। आर्य मनु की सेवा करने आये हैं।

मनु—इसीलिये शत्रु-पक्ष पर विश्वास नहीं करना चाहिये।

इक्ष्वाकु—इस विश्वास के कारण ही उन दोनों ने वलि की सामग्री में हमारी माता को मार कर हविष्य के रूप में उनके शरीर को हमारे सामने लाकर रख दिया।

विश्वामित्र—इधर आपको श्रद्धा के वियोग में तप करते देखकर हमने इडा की प्रेरणा तथा आपके पुत्रों की सहायता से एक विशाल सेना तैयार कर ली है। उसमें सभी ऋषियों के पुत्र सम्मिलित हैं।

मनु—यह ठीक हुआ है। पराजित होने के पश्चात् यज्ञ करते हुए मैंने आपसे निवेदन किया था कि इस पराजय के कलंक को धो डालने का एक मात्र उपाय है युद्ध। मैं किसी के विरुद्ध नहीं हूँ। प्रत्येक जाति को संसार में जीवित रहने का अधिकार मिलना चाहिये। दस्यु भी उतनी ही स्वतंत्रता के अधिकारी हैं जितने कि हम आर्य लोग।

इक्ष्वाकु—किन्तु पिता......हम लोग तो आर्य हैं न? आर्य-धर्म, आर्य-जाति ही (बुध, शर्याति, सूनृता तथा अन्य आर्यों का प्रवेश) संसार में श्रेष्ठ है। क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि हम जहाँ दस्युओं को शिक्षित करें, वहाँ अपनी संस्कृति द्वारा उनको उन्नत भी बनावें?

प्रांशु—वह सब प्रेम से होगा। धीरे-धीरे उनमें अपनी सद्भावना का विश्वास उत्पन्न करने से होगा। मेरा तो विश्वास है यदि हम आर्य लोग उनको अपना केवल दास ही न बनाकर उन्हें अपने समान भी समझते तो यह युद्ध न होता। तुम इतनी सी बात नहीं समझते।

मनु—साधारणतया यह सब सत्य होते हुए भी मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह अपने सामने विरोधी प्रवृत्तियों के आते ही उन्हें दवाने के लिये संघर्ष करता है। मनुष्य स्वभावतः जिस वातावरण, जिस अवस्था में पलता है उसका स्वभाव वैसा ही हो जाता है। मनुष्य वातावरण का प्राणी है।

भिन्न वातावरण में आते ही उसकी प्रकृति विद्रोह करने लगती है। दस्युओं की भी यही दशा है।

नाभागोदिष्ट—किन्तु दानवों, राक्षसों का ठीक होना क्या संभव है? मेरा विश्वास है इनको न तो आर्य बनाया जा सकता है और न ये कभी ठीक ही हो सकते हैं?

मनु—मेरा मत है कि दानव, राक्षस, दैत्य मनुष्य जाति में नहीं हैं। ये लोग विचार, आकृति में पशु हैं। पशु-पक्षी और मनुष्य के बीच में जो शृंखला है उसी वर्ग के ये लोग हैं। किन्तु यह जाति अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकती। यदि आप इनकी प्राचीनता की खोज करें तो ज्ञात होगा कि यह जाति अब दिन प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है। इससे मुझे कोई भय भी नहीं है।

इक्ष्वाकु—तीन सौ आर्यों के साथ आर्य बुध कल उत्तरापथ से आये हैं। **(परिचय देने पर बुध मनु को प्रणाम करता है)** ये इनकी बहन सूनृता हैं।

(दोनों के प्रणाम को मनु स्वीकार करते हैं।)

आर्य बुध ने हमारे वर्ग को सहयोग दिया है, युद्ध की कुछ कलाएँ भी उन्होंने हमको बताई हैं।

बुध—आपका दर्शन करके मैं कृतकृत्य हुआ मनु आर्य! मैं बहुत दिनों से आपका नाम सुनता आ रहा था। इसी लालसा को लेकर मैं हिमालय के शिखर से उतरा हूँ।

इडा—**(आँखों में हँसकर)** बुध हमारे लिये एक प्रेरणा हैं पिता?

इक्ष्वाकु—और मेरे इस युद्ध-विजय की सूचना भी।

शर्याति—इनकी बहन, मेरी वाणी है सूनृता।

मनु—आप लोग युद्ध की तैयारी कीजिये। इस शरद् में हम लोग आक्रमण करेंगे।

बुध—(इडा से धीरे हँसकर) क्या अभद्र की भी प्रशंसा होती है आपके यहाँ ?

इडा—आपने उस दिन जो कहा था कि यह पराजय विजय में बदलनी चाहिये, हम लोग उसी प्रेरणा के अनुसार काम कर रहे हैं।

इक्ष्वाकु—नाभाग नावें बनवा रहे हैं। धृष्ट मनुष्यों को बाण-विद्या सिखा रहे हैं। नारिष्यंत और प्रांशु शत्रु पर आक्रमण करके विजय प्राप्त करने की विधि बताते हैं।

मनु—और बेटी इडा ?

इक्ष्वाकु—वस्तुतः सभी कुछ वहन इडा ने किया है। इन्होंने गोत्रों में जा जा कर व्यक्तियों को युद्ध के लिये प्रेरित किया है। इसके अतिरिक्त अपाला, घोषा, सूनृता, लोपामुद्रा आदि ऋषि कन्याओं को इन्होंने स्वयं स्वावलंबी एवं युद्ध में क्षत-विक्षत आर्यों की सेवा का भार सौंपा है।

नाभाग—(क्रोध से) यह सब कुछ इडा ने किया है। हमने कुछ भी नहीं किया, नारी का युद्ध से क्या सम्बन्ध !

प्रांशु—इसमें बुरी बात क्या हुई। क्या वस्तुतः इडा ने दिन-रात एक करके कार्य नहीं किया ?

नाभाग—तू मूर्ख है।

इक्ष्वाकु—तुम चुप रहो प्रांशु !

मनु—हूँ। बल जहाँ मनुष्य का मित्र है वहाँ शत्रु भी है बेटा नाभाग !

वशिष्ठ—इस समय संपूर्ण वर्ग में युद्ध की लहर दौड़ गई है।

इडा—मैं सोचती हूँ कि युद्ध के उपरांत हम लोग इस प्रकार संगठित हों कि भविष्य में कभी भी शत्रु से परास्त न हो सकें।

मनु—वह तो वर्ण-विभाग के बिना असंभव है। इस पर मैंने बहुत विचार किया है बेटी। इसके अतिरिक्त मैं इस युद्ध के लिये भी कुछ सेना-नायक तथा सर्वोपरि एक सेनापति की नियुक्ति करना चाहता हूँ। कल मैं

सबका युद्ध कौशल देखूँगा तभी निर्णय दूँगा। मैं चाहता हूँ सैनिकों को 'क्षत्रिय' संज्ञा दी जाय।

विश्वामित्र—यह पराजय हमारे ऊपर बड़ा कलंक है आर्य। इसको तो दूर करना ही होगा। हम लोगों का न तो यज्ञ में मन लगता है न उपासना में। प्रत्येक प्राणी युद्ध ही युद्ध पुकार रहा है।

मनु—यह शुभ लक्षण है आर्य ? मैं इन वीरों को साधुवाद देता हूँ कि इन्होंने अपनी असावधानी से लाभ उठाया। यही तो क्षत्रियता है।

अत्रि—ईश्वर आपका कल्याण करे मनु ? यह पराजय हमारे लिये कलंक है। हमारा चित्त बहुत ही विचलित हो गया है।

मनु—इन्द्र की उपासना कीजिये वे ही हमारे युद्ध के देवता हैं। कल प्रातः काल सेना का निरीक्षण होगा।

सब—हम लोग उद्यत हैं। [**'आर्य मनु की जय' के साथ सभा समाप्त होती है। सब लोग उठकर चले जाते हैं। केवल बुध की प्रार्थना पर इडा रह जाती हैं**]।

बुध—मुझे आपके दर्शनों की बड़ी लालसा थी इडा देवी ?

इडा—सुद्युम्न आज रात्रि को आपसे मिलेंगे। मैंने उनसे कह दिया है।

बुध—वे इस अवसर पर क्यों नहीं आये इडा ?

इडा—कदाचित् उन्हें कोई कार्य विशेष होगा। (**जाने लगती है**)।

बुध—क्या आप कुछ समय ठहर नहीं सकतीं ?

इडा—(**क्रोध भरी दृष्टि से**) नहीं, मुझे कार्य है। मैं अभी जा रही हूँ। क्षमा कीजिये।

बुध—मैं तुमसे......(**कहते-कहते रुककर**)

(**इडा बिना कुछ उत्तर दिये प्रणाम करके चली जाती है। अकेले में**)

इडा, तुम्हारी क्रोधभंगिमा भी मेरे स्वर्ग का स्वप्न है।

चौथा दृश्य

[सिन्धु नदी का तट। चन्द्रमा की किरणें बिखरकर लहरों से अठखेलियाँ कर रही हैं। सब ओर प्रकाश फैल रहा है। सब ओर सुनसान है। सुद्युम्न और बुध का प्रवेश]

सुद्युम्न—इसी स्थान पर क्यों नहीं बैठते। देखो, यह कितना सुन्दर स्थान है ? तुम्हारी तरह मनोरम ?

बुध—(उन्मन-सा) मेरी तरह नहीं तुम्हारी तरह अप्रत्यक्ष। तुमसे बहुत कुछ कहना है आर्य सुद्युम्न ? आज मुझे ज्ञात हुआ है, तुम्हें यहाँ कोई नहीं जानता केवल इडा देवी जानती हैं। क्या तुम उनके कोई गुप्तचर हो ?

सुद्युम्न—हाँ, इडा की मेरे ऊपर बहुत कृपा है। मैं उनकी इच्छा के अनुसार युद्ध-योजना में संलग्न रहता हूँ। तुम उदास क्यों हो ?

बुध—इसलिये कि तुम सदा अदृश्य रहते हो। जब से मैंने तुम्हें देखा है तभी से मैं तुमको अपना मित्र मानने लगा हूँ। किन्तु तुम्हारी गति-विधि ही कुछ समझ में नहीं आती। देखो, तुम इडा देवी के गुप्तचर हो। क्या उनसे मेरा एक कार्य न करा दोगे ?

सुद्युम्न—क्या ?

बुध—मैं इडा देवी से प्रेम करता हूँ, किन्तु वे सीधे मुख बात ही नहीं करतीं। आज सभा के पश्चात् मैंने उनसे कुछ निवेदन करना चाहा, किन्तु वे बिना उत्तर दिये प्रणाम करके चली गईं। वे मुझे अभद्र समझती हैं।

सुद्युम्न—उनका स्वभाव ही ऐसा है। वे देखने में जितनी सुन्दर हैं उतनी ही कठोर, मैंने तुमसे कहा था न ?

बुध—किन्तु मैं उनके बिना जीवित नहीं रह सकता। मैंने कल्पना में जिस मूर्ति का निर्माण किया था वे उससे भी सुन्दर हैं ? क्या तुम उत्तरापथ की उसी घाटी के द्वार पर रहते हो और इसीलिये हर समय नहीं मिल सकते ?

सुद्युम्न—इडा मुझे जहाँ भेज देती हैं वहीं रहता हूँ। कदाचित् ही इडा तुमसे प्रेम कर सकें।

बुध—क्यों ? क्या मैं असुन्दर हूँ, निर्बल हूँ। यदि मैं चाहूँ तो केवल अपने वर्ग के लोगों को लेकर ही युद्ध-विजय कर सकता हूँ।

सुद्युम्न—यदि तुम्हारी यह बात इडा को ज्ञात होजाय तो वे अवश्य प्रसन्न होंगी।

बुध—तो तुम यह बात उनके कान में डाल देना।

सुद्युम्न—सत्य तो यह है कि इडा तुमको चाहती हैं।

बुध—कैसे कैसे ?

सुद्युम्न—आज प्रातःकाल जब मैं उनके पास गया तो न जाने क्यों बारबार तुम्हारा नाम पृथ्वी पर लिख रही थीं।

बुध—अच्छा, किन्तु मुझे कैसे ज्ञात हो ?

सुद्युम्न—इसका कोई उपाय नहीं है। वे स्वभाव से गंभीर हैं। वे ऐसी कोई बात अपने मुख से न निकालेंगी जिससे ज्ञात हो कि वे तुम्हें प्रेम करती हैं।

बुध—(उदास होकर) फिर ? वे तो मुझे अभद्र समझती हैं सुद्युम्न ?

सुद्युम्न—(सोचकर) फिर भी मेरा विश्वास है कि वे तुम्हें प्यार करती हैं ?

बुध—किन्तु मैं उनके बिना जीवित नहीं रह सकता। मैं युद्ध से पूर्व ही कहीं चला जाऊँगा। किन्तु तुम मेरी बहन सूनृता से विवाह क्यों नहीं कर लेते ?

सुद्युम्न—मैंने अपने विवाह का निश्चय कर लिया है। इसी से मैं सूनृता से विवाह नहीं कर सकता।

बुध—कहाँ।

सुद्युम्न—उसको बताने से तुम्हें कोई लाभ नहीं है।

बुध—तो तुम निश्चय पूर्वक कहते हो कि इडा मुझसे प्रेम करती है?

सुद्युम्न—ऐसा मुझे ज्ञात हो रहा था।

(बुध उदास होकर उठकर चलने लगता है। सुद्यु म्न उसके पास जाकर)

तुम क्या सोच रहे हो?

बुध—सोच रहाहूँ यह मुझे क्या होता जा रहा है? **(सुद्युम्न के हाथों को अपने हाथ में लेकर)** मैं इडा के बिना जीवित नहीं रह सकता सुद्युम्न?

सुद्युम्न—मुझे बड़ा खेद है। हाँ, यदि मैं स्त्री होती तो अवश्य तुमसे ही विवाह करती।

बुध—न जाने विधाता ने तुम्हें इतना सुन्दर बनाकर भी पुरुष क्यों बनाया?

सुद्युम्न—**(रूठकर)** तो क्या पुरुष सुन्दर नहीं होते?

बुध—किन्तु स्त्री का सौन्दर्य पुरुष ही देख सकता है स्त्री नहीं। फिर भी कभी कभी मुझे ज्ञात होता है जैसे तुम पुरुष न होकर स्त्री ही हो।

सुद्युम्न—यह तुम्हारा भ्रम है।

बुध—भ्रम तो है ही। किंतु मुझे ऐसा लगता है, इसके लिये मैं क्या करूँ? भ्रांति का भी तो अस्तित्व है ही सुद्युम्न!

सुद्युम्न—भ्रान्ति का अस्तित्व बुद्धि में होता है, वस्तु तो शुद्ध ही होती है आर्य! अच्छा, कल्पना करो कि मैं स्त्री ही हूँ, फिर तुम क्या करोगे?

बुध—पत्थर में आहार की कल्पना करके उदर तो नहीं भरता न!

सुद्युम्न—**(रूठकर)** तो जाओ सो मैं तुमसे न बोलूँगा। तुम मुझे पत्थर समझते हो। **(रूठकर जाने लगता है)**।

बुध—नहीं, नहीं, मैंने तो दृष्टांत दिया है भाई। अच्छा मैं स्वीकार करता हूँ कि तुम स्त्री हो किन्तु (**फिर ठिठककर**) . नहीं, नहीं, छोड़ो इन बातों को, आओ इडा के सम्बन्ध में बातें करें।

सुद्युम्न—कल्पना करो कि मैं इडा हूँ, अब फिर ?

बुध—तो मैं कहूँगा तुम अद्वितीय रूपवती हो प्रिये ?

सुद्युम्न—फिर ?

बुध—फिर क्या, इडा कुछ उत्तर तो देंगी ही। वह तुम उत्तर दो।

सुद्युम्न—हाँ, उसने उत्तर दिया। आगे क्या कहोगे ?

बुध—(**हँसकर**) आगे तो उनके उत्तर पर निर्भर होगा न ?

सुद्युम्न—अच्छा मान लो उसने उत्तर दिया कि मैं कुरूप हूँ।

बुध—यह मैं मान नहीं सकता। कोई स्त्री अपने को प्रियतम के सम्मुख अपने को कुरूप न कहेगी।

सुद्युम्न—तो क्या कहेगी ?

बुध—वह कहेगी—तुम भी बड़े सुन्दर हो प्रियतम ?

सुद्युम्न—समझ लो मैंने वही कहा—आगे ?

बुध—समझ लो नहीं, कहो।

सुद्युम्न—तुम भी बड़े सुन्दर हो प्रियतम !

बुध—तब मैं उसके शरीर पर हाथ रख दूँगा। (**हाथ रख देता है, सुद्युम्न को एकदम रोमांच हो जाता है**) हैं, तुम काँप क्यों रहे हो ?

सुद्युम्न—न जाने क्यों ऐसा हो गया। जाने दो। अब मैं अवश्य इडा से तुम्हारे प्रेम का वर्णन करूँगा। किन्तु यह स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध है किसलिये ?

बुध—यह तो स्वाभाविक है भाई।

सुद्युम्न—स्वाभाविक होते हुए भी सृष्टि-निर्माण इसके मूल में है। पिता मनु यही तो कहते हैं।

बुध—सृष्टि की उत्पत्ति किसलिये है ?

सुद्युम्न—सृष्टि जीवन - विकास है। यही तो वेद कहता है।

बुध—यदि न हो तो क्या हानि है ?

सुद्युम्न—न होना अस्वाभाविक है इस सृष्टि का होना भी स्वभाव है ?

बुध—यह स्वभाव की प्रेरणा किसने दी ?

सुद्युम्न—प्रलय ने ? प्रलय अर्थात् नाश प्रकृति है और जीवन विकृति है। प्रकृति एक-सी अपने रूप में कभी नहीं रह सकती। उसमें परिवर्तन होना स्वाभाविक है। वह परिवर्तन ही जीवन है, उसी का दूसरा नाम सृष्टि है।

बुध—यदि मनुष्य की सृष्टि न होकर पशु-पक्षियों की ही सृष्टि होती तो क्या हानि थी !

सुद्युम्न—यह भी असंभव है। पशु-पक्षी के बाद मनुष्य का उत्पन्न होना अवश्यंभावी था। यह तो जीवन का विकास है। विकास को कौन रोक सकता है ?

बुध—मनुष्य के पश्चात् क्या होगा ?

सुद्युम्न—मनुष्य के बाद भी मनुष्य। अधिक विकसित मनुष्य। मनुष्य प्राकृतिक परिश्रम की पराकाष्ठा है। हाँ, उसकी श्रेणियाँ हैं। उन्हीं श्रेणियों में वह विकास की पराकाष्ठा तक पहुँचेगा। उसी में बराबर संघर्ष होते रहेंगे। वह मनुष्य का नहीं उसकी प्रकृतियों का संघर्ष होगा। उस संघर्ष में ही जीवन का अंत है।

बुध—क्या मनुष्य कभी देवता नहीं बनेगा ?

सुद्युम्न—यह भी तो एक प्रकृति है। श्रेष्ठ-प्रकृतियाँ ही उसको देवता बनाती हैं। निकृष्ट प्रकृतियों से वह नीचतम-श्रेणी का मनुष्य बना रहता है।

बुध—क्या तुम बता सकते हो, इस सृष्टि का अंत कहाँ है ?

सुद्युम्न—जहाँ इस नदी का अंत है।

बुध—समझा नहीं।

सुद्युम्न—जिस प्रकार इन नदियों का अंत सागर में है। उसी प्रकार इस संपूर्ण विश्व का अंत, जिसमें प्राण वर्तमान है, महाप्राण में है। महाप्राण न प्रकाश है न अंधकार। न जीवन है न मरण।

बुध—तब वह क्या है ?

सुद्युम्न—वह प्रलय का अंधकार होते हुए भी वास्तविक है स्वयं अंधकार नहीं है। उसमें गति है, आलोक है और सब कुछ है, किन्तु वह स्वयं क्या है, यह कहा नहीं जा सकता।

बुध—तुम तो बड़े ज्ञानी भी हो।

सुद्युम्न—ज्ञान चिंतन से प्राप्त होता है। पिता कहते हैं तुम अपना मार्ग स्वयं खोजकर निकालो। तुम्हारे सब समाधान तुम्हारे भीतर हैं। जैसे हमारे ज्ञान में प्रश्न उठते हैं वैसे ही उनके उत्तर भी हमारे ही ज्ञान में हैं। जानते हो पिता ने हमारा नाम मनुष्य क्यों रखा है ?

बुध—इसलिये कि हम मनु के निर्दिष्ट मार्ग पर चलते हैं। मैं तुम्हें बताऊँ सुद्युम्न, जैसे हम इधर आये हैं वैसे ही कुछ लोग इधर से भी उधर गये हैं। उन्होंने मनु के निर्दिष्ट मार्ग का पाठ वहाँ के लोगों को पढ़ाया है।

सुद्युम्न—हाँ, मैंने स्वयं कुछ लोगों को लौटते देखा है।

बुध—चलो बहुत समय हो गया। सुद्युम्न मैं नहीं जानता था तुममें इतना ज्ञान है। क्या ही अच्छा होता कि इडा......

सुद्युम्न—मैं इडा से इस सम्बन्ध में कहूँगा।

बुध—यदि कहो तो मैं उनसे स्वयं मिलूँ ? जब तुम आज की बातें उन्हें सुना दोगे तब मैं उनसे मिलूँगा।

सुद्युम्न—हाँ ठीक है ? (दोनों एक ओर से निकल जाते हैं। शर्याति और सूनृता का प्रवेश)।

शर्याति—कदाचित् यहाँ भी आर्य बुध नहीं हैं।

सूनृता—न जाने कहाँ चले गये ? सुद्युम्न के साथ इधर ही तो वे आये थे ?

शर्याति—यह सुद्युम्न कौन है ?

सूनृता—शर्याति, तुम्हें क्या बताऊँ मैं सुद्युम्न से कितना प्रेम करती हूँ।

शर्याति—(उदास होकर) मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ सुद्युम्न नाम का कोई मनुष्य इस सारे वर्ग में नहीं है।

सूनृता—मैं कैसे कहूँ कि सुद्युम्न नाम का कोई व्यक्ति नहीं है। वे हमारे साथ ही तो मार्ग दिखाते यहाँ आये। फिर अभी आर्य बुध उनके साथ इस तट की ओर आये हैं ?

शर्याति—आश्चर्य है ?

सूनृता—आश्चर्य नहीं सत्य है शर्याति ?

शर्याति—यदि सुद्यु म्न कोई व्यक्ति न हुआ तो......(उसकी आँखों में देखकर) फिर ?

सूनृता—तो मैं क्या कहूँ शर्याति, तुम ऐसे क्यों देख रहे हो ?

शर्याति—कैसे सूनृता ?

सूनृता—जैसे मैं सुद्युम्न को देखना चाहती हूँ।

शर्याति—मैं तुमको कल्पित सुद्युम्न की तरह देखना चाहता हूँ प्रत्यक्ष शर्याति बनकर ?

सूनृता—नहीं नहीं, तुम ऐसे मत देखो शर्याति ? मैं सुद्युम्न को वरण कर चुकी हूँ। मैंने उनसे कई बार प्रार्थना की किन्तु......

शर्याति—उसने क्या उत्तर दिया ?

सूनृता—उन्होंने जो उत्तर दिया वह बड़ा हृदय विदारक है शर्याति ?

शर्याति—क्या ?

सूनृता—यही कि मैं किसी स्त्री से विवाह नहीं कर सकता। (**एक स्थल पर बैठ जाती है। शर्याति उसके समीप बैठकर**)।

शर्याति—सुद्युम्न ने यह उत्तर दिया ?

सूनृता—हाँ शर्याति, तुम क्या सोच रहे हो ?

शर्याति—कुछ नहीं यही कि सुद्युम्न कौन है ?

सूनृता—(**शर्याति के कंधे पर हाथ रखकर**) कौन हैं वह ?

शर्याति—यही तो सोच रहा हूँ कि वह कौन है ? यदि सुद्युम्न पुरुष न होकर स्त्री हो तो ?

सूनृता—क्या यह कभी संभव है ? नहीं, यह कभी संभव नहीं है शर्याति ? मुझे तो कभी कभी तुम्हें देखकर सुद्युम्न का भ्रम हो जाता है। उस दिन भी ऐसा ही हुआ ?

शर्याति—आश्चर्य है ? (**सोचता रहता है**)।

सूनृता—चलो चलें। वे यहाँ नहीं हैं।

(**ठहरकर**)

शर्याति—मेरा विश्वास है सुद्युम्न ने जब स्त्री से विवाह न करने को कहा है तब अवश्य इसमें कोई रहस्य है !

सूनृता—मैं बहुत दुखी हूँ शर्याति ! न जाने क्यों सुद्युम्न को देखते ही मैं उनसे प्रेम करने लगी।

शर्याति—क्या तुम्हारा विश्वास है मेरी आकृति सुद्युम्न से मिलती है ?

सूनृता—हाँ, तुम दोनों की आकृति एक सी है।

शर्याति—तब अवश्य कोई मेरा भाई होगा। हम लोग दस भाई बहन हैं ?

सूनृता—तब निश्चय ही वे तुम्हारे भाई होंगे। निश्चय.... (**प्रसन्न होती है**)।

शर्याति—किन्तु उनमें से किसी का भी नाम सुद्युम्न नहीं है।

सूनृता—निश्चय ही उनका नाम सुद्युम्न है। मुझे अच्छी तरह स्मरण है। सुद्युम्न, सुद्युम्न। हाँ, यही नाम तो है।

शर्याति—मैं सुद्युम्न को एकबार देखना चाहता हूँ सूनृता ?

सूनृता—वे अभी अभी तो आर्य बुध के साथ इस ओर आये हैं ?

शर्याति—चलो ढूँढ़ें ?

सूनृता—स्थल के मनुष्य बड़े रहस्यमय होते हैं शर्याति च .....लो।

शर्याति—ठहरो, मैं एक बात कहना चाहता हूँ !

सूनृता—क्या कहो, शीघ्र कहो, विलंब हो रहा है, मैं जानना चाहती हूँ कि वे दोनों कहाँ चले गये ?

शर्याति—तो क्या तुम सुद्युम्न के साथ विवाह करना चाहती हो ? यदि वह न करे तो ?

सूनृता—तो भी मैं चाहती हूँ कि वह मेरे साथ विवाह करें। मैं उनको चाहती हूँ शर्याति, मैं उनके बिना जीवित नहीं रह सकती।

शर्याति—इसी प्रकार यदि कोई युवक किसी कन्या के साथ विवाह किये बिना जीवित न रह सकता हो तो ?

सूनृता—तो उस कन्या को चाहिये कि ऐसे प्रेमी से अवश्य विवाह करे। किन्तु यह क्या, तुम ऐसी बातें क्यों कह रहे हो ?

शर्याति—सुनो सूनृता, मैंने जब से तुम्हें देखा है तब से मैं तुमसे प्रेम करने लगा हूँ।

सूनृता—(घबराकर) यह तो बुरी बात है शर्याति, मैं तुमसे विवाह कैसे कर सकती हूँ ?

शर्याति—सूनृता, आर्यों का मन अस्थान पर कभी नहीं डिगता।

सूनृता—तुमने मुझे विभ्रम में डाल दिया। चलो। (मन में) आर्यों का मन अस्थान पर नहीं डिगता। यह कितना सत्य है।

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[सिन्धु के उस पार आर्यों के शिविर। मनु टहल रहे हैं एक ऊँचे शिखर पर जहाँ से युद्ध की कुछ भी गतिविधि दिखाई नहीं दे रही है]।

मनु—(घूमते हुए) आर्यों की इस विजय में ही उनकी उन्नति, उनका विकास निश्चित है। इस लम्बी नाक, विशाल मस्तक, लम्बे मुखवाली बुद्धिमान् जाति को जीवित रहना है तो उसे युद्ध करना ही पड़ेगा। बीज को भी तो पृथ्वी फोड़कर निकलते समय संघर्ष करना पड़ता है। नदी-प्रवाह को पर्वतों के उदर से निकलने के लिये पत्थरों को तोड़-फोड़कर, शिलाखण्डों, वृक्षों को पीसते, उखाड़ते हुए आगे बढ़ना पड़ता है। सृष्टि प्रगति का नाम है; जो जीवन को अधिक-से-अधिक सुसंगत बना सकने पर ही सफल होगी। इस समय आर्यों के अतिरिक्त कोई ऐसी जाति भूतल पर नहीं है जिसकी संस्कृति से आनेवाले संसार को लाभ हो सके। मुझे स्वर्ण के आभूषण गढ़कर जहाँ राजाओं के लिये मुकुट निर्माण करने होंगे वहाँ इन शिलाओं की सुन्दर मूर्तियों का भी निर्माण करना होगा। मेरा काम निर्माण करना है। मेरे पूर्वजों ने मनुष्य को पशु से भेद करना सिखाया। उनमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, स्त्री-पुरुष की विवेचना उत्पन्न की; विचार दिये, विचारों के अनुसार अभिव्यंजना दी और अभिव्यंजना के अनुकूल भाषा दी। मैं मनुष्य में

चिंतन शक्ति दूँगा। उनके समाज का निर्माण करना मेरा कार्य है। कौन ? अरे शर्याति ?

(शर्याति का प्रवेश)

शर्याति—पिता, शत्रु पूर्ण रूप से पराजित हो रहे हैं। राक्षस एक-एक करके समाप्त हो रहे हैं। दस्युओं का साहस एक प्रकार से समाप्त सा है पिता !

मनु—ठीक हो रहा है किन्तु देखो इक्ष्वाकु और बुध से मेरी ओर से कहना कि व्यर्थ की हत्या न करें। जैसे ही शत्रु अस्त्र डाल दें वैसे ही उन्हें बन्दी बना लिया जाय।

शर्याति—जो आज्ञा। (जाने लगता है)।

मनु—और देखो, उस वासुकि और चिन्न को जीवित पकड़ने की आवश्यकता है।

शर्याति—बहुत अच्छा पिता, बहन इडा भी युद्ध कर रही हैं।

मनु—अच्छा ! यह कन्या असाधारण है।

शर्याति—आर्य-बुध तो बड़े वीर निकले। उन्होंने शत्रु के छक्के छुड़ा दिये।

मनु—अच्छा है। यह न होता तो हमारे लिये कोई स्थान भी तो नहीं था।

(विश्वामित्र का प्रवेश)

विश्वामित्र—आर्य मनु, इस बार मेरा क्षत्रियत्व जागरूक हो गया। मैंने भी शत्रुओं का खूब ही दमन किया। (रक्त पोंछते हैं)।

शर्याति—ऋषि विश्वामित्र जिस समय मंत्र पढ़कर बाण छोड़ते थे उस समय राक्षसों में त्राहि त्राहि मच जाती थी। (जाता है)

मनु—यह क्या, आपके हृदय से रक्त बह रहा है। सच्चे क्षत्रियों की पहचान रक्तदान है। वस्तुतः आप जहाँ ब्रह्मर्षि हैं वहाँ राजर्षि भी हैं। (उनके रक्त को पोंछते हैं। सूनृता दौड़कर जल लाती है। विश्वामित्र एक

शिलाखण्ड पर बैठ जाते हैं। सूनृता उनका रक्त धोती है। इसी के साथ नेपथ्य में 'जय जय' की ध्वनि सुनाई देती है।) ज्ञात होता है हम लोग पूर्ण रूप से विजयी हुए।

(बहुत से क्षत्रिय मनु के सम्मुख आते हैं। 'जय जय' करते हुए रुधिर से नहाये हुए, क्षत विक्षत। मनु सबको प्रसन्नता की दृष्टि से देखकर उनका स्वागत करते हैं। लोपामुद्रा, घोषा, अपाला तथा अन्य कई ऋषि-कन्याएँ योद्धाओं की सेवा करतीं उन्हें ले जाती दिखाई देती हैं। इसके पश्चात् मनु के पुत्र, वशिष्ठ, अत्रि, आदि ऋषि आते हैं। 'सब एक स्वर से कहते हुए जय हो आर्यों की, जय हो मनु की।')

बन्धुओ, मैं इस विजय पर आप सबको बधाई देता हूँ।

सब—यह आपके ही पुण्य प्रताप का फल है।

ऋषि—आर्य मनु, वस्तुतः तुमने ही आर्यों को पुनरुज्जीवित किया है।

सैनिक—हमारी विजय आपकी विजय है और आपकी विजय आर्य-जाति की विजय है।

मनु—मुझे ऋषियों के आशीर्वाद पर और आपके बल पर पूर्ण विश्वास था बन्धुओ ! क्या वे वासुकि और चिन्न जीवित हैं ?

इक्ष्वाकु—हम लोग आपके आज्ञानुसार दोनों को जीवित पकड़ कर लाये हैं। **(संकेत करने पर वे लाये जाते हैं।)**

मनु—**(वासुकि और चिन्न की ओर प्रेम से देखते हुए)** तुमने व्यर्थ ही इतना उपद्रव खड़ा करके हमको तथा अन्य आर्यों को इस परिस्थिति में डाला, क्या तुमको इसका कोई खेद नहीं है ?

वासुकि—यह देश हमारा है तुम्हारा नहीं।

चिन्न—हम इस देश के स्वामी हैं। यह हमारा कर्तव्य था कि हम तुमको मार कर अथवा छल करके यहाँ से हटा देते। वही हमने किया।

मनु—तुम यह कैसे कह सकते हो कि यह भूमि तुम्हारी ही है ?

वासुकि—इसलिये कि तुम न जाने कहाँ से यहाँ आ रहे हो। हम लोग इस देश के पुराने वासी हैं।

मनु—यह तुम्हारा भ्रम है भाई। हम लोग भी इसी भूमि के निवासी हैं। हिमालय इसी भूमि का पर्वत है। हम लोग केवल हिमालय से उतर कर स्थल में आने से विदेशी कैसे हो गये ? जल-प्रलय के समय जितनी भूमि आज तुम यहाँ देखते हो वह सब कुछ नहीं थी। हिमालय की उपत्यका तक जल ही जल था। उस समय भी मैं यहाँ था। उससे पूर्व भी हमारे आर्य इसी भूमि पर रहते थे।

चित्र—किन्तु हमने तो सुना है आर्य लोग बाहर से आये हैं ?

मनु—यह तुम्हारा भ्रम है। इसके अतिरिक्त हम तुम पर कोई अत्याचार तो नहीं करते केवल तुम्हारे साथ मिलकर रहना चाहते हैं। तुम्हें इस पृथ्वी को भोगने का उतना ही अधिकार है जितना हमको।

वासुकि—आर्य लोग बुद्धिमान् हैं। हम तुम्हारी अपेक्षा कम जानते हैं। यदि हम तुम लोगों में रहेंगे तो हमारे संस्कार, हमारी जाति नष्ट हो जायगी। इसीलिये हम आर्यों को इस भूमि पर नहीं रहने देना चाहते।

अत्रि—किन्तु तुम यह तो चाहते हो कि तुम भी आर्यों की तरह बुद्धिमान् बन जाओ ?

चित्र—हाँ, क्यों नहीं। किन्तु आपसे हमें भय भी कम नहीं है ?

वशिष्ठ—जब तुम हम सब साथ साथ रहेंगे तो तुममें भी वे ही भाव आ जायगे जो हममें हैं।

मनु—स्पष्ट तो यह है कि हम बलवान् होते हुए भी तुम्हारा विनाश नहीं चाहते। यदि तुम्हें हमारे साथ भाई भाई बनकर रहना

हो तो हम उद्यत हैं। अन्यथा तुम्हें इस भूमि को छोड़ देना होगा।

वासुकि—हमको दास तो न बनाया जायगा ?

मनु—हम तुमको अपना स्वामी बना सकते हैं यदि तुम बन सको।

वासुकि—तो ठीक है हम लोग आर्यों के गोत्रों में समानाधिकार भोगते रहेंगे।

मनु—स्वीकार है। तुम्हारे ऊपर कोई अत्याचार न होगा।

वासुकि—हमारा कार्य क्या होगा ?

मनु—जो काम तुम चुनो, जो तुम्हें स्वीकार हो। हम तुम्हारी रक्षा करेंगे, तुम्हें ज्ञान देंगे। तुम्हें पूर्ण स्वतंत्रता होगी कि दूसरों को कष्ट न पहुँचाते हुए सुख से रह सको। न हम तुम्हारे विचारों में बाधा देंगे और न किसी प्रकार का कष्ट ही तुमको होगा।

वासुकि—तो हम कभी युद्ध नहीं करेंगे।

चिन्न—किन्तु मैं तो आर्यों के साथ नहीं रहना चाहता।

मनु—तो तुम जहाँ इच्छा हो जा सकते हो।

चिन्न—आर्य लोग हमें कष्ट तो न देंगे।

मनु—यदि तुम उनके मार्ग में आकर खड़े न होगे।

चिन्न—हम वनों में रहेंगे। हमसे आर्यों से कोई सम्बन्ध नहीं।

मनु—जैसी तुम्हारी इच्छा। इडा और बुध कहाँ हैं ?

इक्ष्वाकु—वे नहीं आये। न जाने क्या हुए ?

मनु—हाँ, मेरी बेटी इडा को खोजो। वही मेरी बुद्धि है इक्ष्वाकु ?

(जय घोष के साथ सब चले जाते हैं। मनु खड़े खड़े सोचते दिखाई देते हैं)।

दूसरा दृश्य

(संध्या समय)

[वन में एक व्यक्ति सुद्युम्न पर आक्रमण कर रहा है। सुद्युम्न उसको अपने बाण से धराशायी कर देता है। इतने में पीछे से एक दस्यु कुंत लेकर उस पर टूट पड़ता है कि दोनों में मल्लयुद्ध होने लगता है। सुद्युम्न गिर जाता है। दस्यु कुंत से सुद्युम्न का सिर काटना ही चाहता था कि विजयी बुध उधर आ निकलता है। और अचानक एक बाण से दस्यु को मार कर गिरा देता है। फिर भी बिना सुद्युम्न की ओर ध्यान दिये ही वह चलने लगता है। किन्तु सुद्युम्न के कराहने का शब्द सुनकर उसी तरफ़ लौटता है। जाकर देखता है कि सुद्युम्न क्षत-विक्षत, असंज्ञ होकर भूमि पर पड़ा है। बुध उसे देखते ही चिन्तित होकर]

बुध—सुद्युम्न, यह क्या हुआ ? (उसे देखता है और पास से जल लाकर उसके मुँह में डालकर देखता हुआ) यह मैं क्या स्वप्न देख रहा हूँ ? (धीरे धीरे से मुस्करा कर देखता रहता है)

सुद्युम्न—(मूर्छित अवस्था में) बुध, आर्य बुध, प्रियतम ?

बुध—(खड़ा होकर प्रसन्नता को दबाता हुआ) मेरे अदृष्ट, तुम बड़े बलवान् हो। यह तो सुद्युम्न नहीं आर्या इडा हैं। देवी, इडा (जल डालता है चेतनता आती है)

सुद्युम्न—(आँखें खोलकर मुस्कराता हुआ) तुम कब आये ?

बुध—अभी तुम्हारे कराहने का शब्द सुनकर। एक व्यक्ति तुम्हारे ऊपर आक्रमण कर रहा था न ? उसको मार देने के पश्चात् मैं तो जा रहा था किन्तु तुम्हारी

बोली पहचान कर इधर दौड़ा। आज मैं कितना प्रसन्न हूँ सुद्युम्न ?

सद्युम्न—क्यों ?

बुध—इसलिये कि छल का अंत भी बड़ा मधुर निकला।

सुद्युम्न—छल, कैसा छल ?

बुध—छली उस आनंद को कहाँ जान पाता है सुद्युम्न, जितना कि वह जिसे छला जाय।

सुद्युम्न—किंतु आर्य लोग तो कभी किसी से छल नहीं करते। मैं तुम्हारी बात नहीं समझी।

बुध—'नहीं समझी' इसका सबसे बड़ा प्रमाण है इडा।

सुद्युम्न—(बनावटी क्रोध से) तुम मुझे इडा समझते हो। मैं सुद्युम्न हूँ।

बुध—नहीं, मैं कल्पना करता हूँ कि तुम इडा हो। आज मेरे नेत्र छले नहीं जा सकते, बुद्धि को बहकाया नहीं जा सकता इडा ?

सुद्युम्न—तुम क्या कह रहे हो ?

बुध—वही जो तुम हो। (उठाता है) इडा देवी !

इडा—प्रियतम, यह शरीर, यह आत्मा, यह मेरा मानस आज तुम्हारे चरणों में समर्पित है आर्य ? इसे स्वीकार करो। (चरणों पर गिर जाती है सुद्युम्न उठाता है)।

बुध—मन, प्राणी और बुद्धि से मैं तुम्हारा भक्त हूँ इडा। इस विजय का फल मुझे बड़ा मधुर मिला। आशातीत, अभूतपूर्व।

इडा—दो प्राणों का मिलन प्राणों की विजय है।

बुध—दो हृदयों का मिलन सृष्टि की विजय है इडा ?

इडा—तुम कितने सुन्दर हो प्रियतम ?

बुध—तुम कितनी निठुर हो प्रियतमे, कि तुम मुझे सदा छलती रहीं। किन्तु नहीं, मैं कहता हूँ—प्रियतमे, तुम अद्वितीय हो। अब तुम इसका उत्तर क्या दोगी ?

क्या यह कि प्रियतम—'मैं तो कुरूप हूँ।' मैं अपनी तरफ़ से कहता हूँ—'मैं कितना कुरूप दीन, हीन हूँ प्रियतमे !'

इडा—वह मेरा सुद्युम्न का रूप था। (दोनों हँसते हैं)

बुध—भला तुमने यह पुरुष का रूप क्यों रक्खा ?

इडा—इस पराजय ने मुझे इतना विरक्त तथा दुखी बना दिया कि दिन रात एक करके पुरुषों और स्त्रियों को युद्ध के लिये उकसाती थी। इसी बीच एक गोत्र से दूसरे गोत्र में जाते हुए मैंने अचानक पुरुष का वेश धारण कर लिया। वहाँ उन पुरुषों को मेरे इस रूप परिवर्त्तन से बड़ा भ्रम हुआ। भेद खुलने पर हम लोग पहरों हँसते रहे। इसके पश्चात् अचानक उत्तरा-पथ की घाटी में उस दिन पुरुष-वेश में जा पहुँची। वहाँ तुमसे भेंट होगई। फिर तुमसे संपर्क रखने के लिये मैंने पुरुष वेश बनाए रखना उचित समझा।

बुध—वह भी प्रायः साँझ को अथवा रात को।

इडा—किंतु तुम इतने भोले निकले कि स्वर से भी न पहचान सके।

बुध—मुझे भ्रम तो होता था किंतु इस रूप की कल्पना ही नहीं कर सकता था। यह तो मेरे जीवन में नई कल्पना है। यह कितना सुन्दर हुआ इडा ! किन्तु मुझे दुख है कि इससे विचारी सूनृता का हृदय टूट जायगा।

इडा—मैं सूनृता का उपाय कर चुकी हूँ। अच्छा, अब हम लोगों को चलना चाहिये। पिता प्रतीक्षा में होंगे। (**चले जाते हैं शर्याति सुद्युम्न के वेश में। पीछे से सूनृता का प्रवेश**)

सूनृता—सुद्युम्न, सुद्युम्न, तुम हो क्या ? तुमने इडा को देखा है।

सुद्युम्न—नहीं।

(एक ओर को मुँह फेरकर बैठा रहता है)

सूनृता—आर्य बुध को।

सुद्युम्न—नहीं।

सूनृता—सुद्युम्न तुम कितने सुन्दर हो?

सुद्युम्न—(चुप)

सूनृता—(इधर उधर देखकर) तुम चुप क्यों हो? क्या आर्य बुध की प्रतीक्षा में हो?

सुद्युम्न—नहीं।

सुनृता—तुम चुप क्यों हो?

सुद्युम्न—तुमने सुना, आर्य-बुध का गंधर्व विवाह बहन इडा से हो गया।

सूनृता—तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ?

सुद्युम्न—मैंने अभी उन दोनों को इस वन से निकलते देखा है।

सूनृता—यह कितनी अच्छी बात है सुद्युम्न, तुमसे एक बात कहूँ?

सुद्युम्न—क्या?

सूनृता—यही कि हम दोनों का विवाह हो जाय तो.........

सुद्युम्न—नहीं, यह नहीं हो सकता।

सूनृता—क्यों नहीं हो सकता सुद्युम्न, क्या मैं कुरूप हूँ। तुम मेरी ओर देखो।

सुद्युम्न—(उसके सामने हो जाती है सुद्युम्न मुँह फेरकर) हो तो अच्छी।

सुनृता—फिर क्या बात है?

सुद्युम्न—(चुप)

सूनृता—क्रुद्ध हो गये?

सुद्युम्न—नहीं।

सूनृता—फिर?

सुद्युम्न—एक ऋषि का शाप है कि सुद्युम्न किसी नारी से विवाह नहीं कर...।

सूनृता—हाँ हाँ, कहो चुप क्यों हो गये?

सुद्युम्न—जाने दो वह तुमको स्वीकार न होगा।

सूनृता—मुझे सब स्वीकार है सुद्युम्न, तुम जो कुछ कहोगे वही मैं करूँगी। आहा, कितनी अच्छी बात है कि भैया बुध का इडा के साथ विवाह हो गया। हाँ कहो ?

सुद्युम्न—सुद्युम्न केवल उसी नारी से विवाह कर सकता है जो विवाह के पश्चात् उसे सुद्युम्न कह कर न पुकारे ?

सूनृता—विचित्र बात है तो क्या कह कर पुकारे ?

सुद्युम्न—यह विवाह के पश्चात् निर्णय होगा।

सूनृता—स्वीकार है। किंतु तुम मेरी ओर देखते क्यों नहीं ? इधर देखो, मैं वनफूल लगाकर आई हूँ।

सुद्युम्न—एक बात और।

सूनृता—क्या ?

सुद्युम्न—विवाह होने तक तुम सुद्युम्न की ओर न देखोगी। नहीं तो वह मर जायगा।

सूनृता—(मन में) कैसी पहेली है। अच्छा स्वीकार है ?

सुद्युम्न—एक बात और।

सूनृता—क्या वह भी कहो। क्या तुम्हारे यहाँ विवाह इसी तरह होता है सुद्युम्न ?

सुद्युम्न—कहो, मैं तुम्हें मन, वाणी कर्म से अपना पति स्वीकार करती हूँ।

सूनृता—(रूठकर) न कहूँ तो क्या तुम विवाह न करोगे ?

सुद्युम्न—नहीं तो विवाह नहीं हो सकता, अच्छा मैं ज़ाता हूँ।

सूनृता—नहीं मैं कहती हूँ मैं तुम्हें मन, वाणी कर्म से अपना पति स्वीकार करती हूँ। बस ?

सुद्युम्न—हाँ ठीक है। चलो चलें। देखना मत।

सूनृता—तुम बड़े नटखट हो सुद्युम्न ! अच्छा चलो।

But you have already spoiled it.
"No need of advising others."

तीसरा दृश्य

[मनु और शश्वती परस्पर बातचीत कर रहे हैं। समय यज्ञ के पश्चात् प्रातःकाल]

शश्वती—पिता, आपने जो वर्ण-विभाग किया है उससे लोग बहुत संतुष्ट दिखाई देते हैं। इस युद्ध ने क्षत्रियों के महत्त्व को बढ़ा दिया है। जो लोग पहले क्षत्रिय बनना स्वीकार नहीं करते थे वे अब गर्व का अनुभव करते हैं। किन्तु वैश्य बनना कोई भी स्वीकार नहीं करता?

मनु—मैंने तुमसे कहा न शश्वती, कि आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। वह समय आने वाला है जब लोग वैश्य-वृत्ति को स्वीकार करेंगे। इसके अतिरिक्त मैं एक और बात सोच रहा हूँ कि राजा का निर्माण किया जाय।

शश्वती—राजा का किस प्रकार? क्या जैसे देवताओं में इन्द्र हैं उस प्रकार?

मनु—हाँ, जो योग्य हो, जिसमें शासन की क्षमता हो, जो प्रजा को पुत्र के समान समझे, वही राजा होने का अधिकारी है। आज यह बात मैंने विजयी क्षत्रियों को एकत्र करके कही थी।

शश्वती—यदि राजा अनुत्तरदायी हो और अत्याचार करे तो?

मनु—प्रजा का यह कर्त्तव्य होगा कि उसे पद-च्युत कर दे।

शश्वती—प्रजा के हाथ में कौन शक्ति है जो उसे पद-च्युत कर सकेगी?

मनु—प्रजा ही तो राजा का बल है शश्वती?

शश्वती—ठीक है।

(कुछ ऋषियों का प्रवेश)

ऋषि—जय मनु की। (बैठते हैं)

मनु—(प्रणाम करके) आइये ऋषिवर ?

सब—हम आपसे एक प्रार्थना करने आये हैं कि आप राज्य-शासन अपने हाथ में लें। हम आपका साथ देंगे।

विश्वामित्र—हम आपको दशांश देंगे।

वशिष्ठ—अमात्य बनकर हम आपको सत्परामर्श देंगे !

शश्वती—ठीक है पिता, यही मेरे प्रश्न का उत्तर है। ब्राह्मण यदि उचित परामर्श देते रहें तो राजा अत्याचारी न हो सकेगा।

मनु—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों राज्य के सूत्रधार हैं ऋषिवर ? ब्राह्मण मस्तिष्क से, क्षत्रिय बाहुबल से, वैश्य धन से तथा शूद्र सेवा द्वारा यदि राज्य की सहायता करें तभी राज्य रूपी शरीर स्थिर रह सकेगा।

वशिष्ठ—हम चाहते हैं आप इस दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई आर्य-जाति को संगठित करने के लिये राजा होना स्वीकार करें।

अत्रि—बिना राजा के व्यवस्था ठीक नहीं रह सकेगी ?

(क्षत्रिय-ब्राह्मण दल के दल आकर एकत्र होते हैं)।

भृगु—आप ही एक मात्र व्यक्ति हैं जो राज्य-शासन भली प्रकार चला सकते हैं। हमारी प्रार्थना है आप राजा बनें।

सब—(एक स्वर से) मनु ही राजा होने के योग्य हैं ? हमारी प्रार्थना है कि आर्य-जाति की रक्षा के लिये आप राजा होना स्वीकार करें। यही हम लोगों की इच्छा है ?

मनु—(खड़े होकर) आपकी आज्ञा शिरोधार्य है किन्तु आपको मेरे बनाये नियमों को प्रत्येक अवस्था में स्वीकार करना होगा।

सब—स्वीकार है।

मनु—मैं केवल वही काम करूँगा जिसमें आपका कल्याण हो।

सब—स्वीकार है।

मनु—मैं वही सोचूँगा जिसमें प्रजा का हित हो।

सब—आप धन्य हैं!

मनु—मेरे लिये सब प्रजा एकसी होगी।

सब—यही राजा का कर्तव्य है!

मनु—मैं सदा न्याय का पक्ष लूँगा और क्या उस न्याय के सामने आप अपने व्यक्तित्व की बलि दे सकेंगे?

सब—अवश्य।

मनु—जैसे माता पिता के अंग से पुत्र की उत्पत्ति होती है, जैसे पुत्र विचार में, चेष्टा में, कार्यकलाप में माता पिता के संस्कारों का अनुकरण करता है वैसे ही राजा भी प्रजा के विचारों का, क्रिया कलापों का, चेष्टाओं का उनके सुख दुख का एक शरीर है। क्या आप ऐसा मानते हैं?

सब—निःसंदेह।

मनु—मुझे आप अपने से भिन्न तो नहीं समझेंगे?

सब – नहीं। कभी नहीं।

मनु—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, प्रजा का कल्याण मेरा ध्येय होगा।

अत्रि—राजा ईश्वर का अंग है। हमको ईश्वर के समान उसकी पूजा करनी चाहिये।

भृगु—निःसंदेह।

(एक ऊँचे आसन पर बैठाकर तथा तिलक करके)

सब—(प्रणाम करके) महाराज मनु की जय हो। विश्व के व्यवस्थापक मनु की जय हो।

मनु—(खड़े होकर) आज से आप लोग अभय हैं। पृथ्वी को शत्रु रहित करके उसे स्वर्ग के समान सुख-योग्य बनाना मेरा कार्य है प्रजाजन! आज से सब संतान मेरी संतान हैं। इक्ष्वाकु, शर्याति, नाभाग, धृष्ट,

नारिष्यंत, प्रांशु, नाभागोदिष्ट, कुरुष, पृषध्र तथा बुध आदि उपस्थित हों।

(सब हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं)

तुमको ज्ञात हुआ कि अब मैं तुम्हारा पिता नहीं, राजा हूँ ?

सब--ज्ञात हुआ महाराज ?

मनु—मैं तुम सब को इस विजय के उपलक्ष में एक एक भूभाग का राजा बनाता हूँ। तुम लोग अपने साथ ब्राह्मणों, ऋषियों को लेकर संपूर्ण प्रदेश में फैल जाओ और राज्यों की व्यवस्था करो। याद रखो प्रजा के दुखी होने का कारण तुम्हारी अयोग्यता है।

सब--जी।

मनु—ब्राह्मणों का सम्मान करो, क्षत्रियों में बल वृद्धि करो, वैश्यों को सुविधाएँ दो। शूद्रों को अपना अंग मानो।

शश्वती—ब्राह्मण कौन हैं ?

मनु—जो वेद पाठी हो। धर्मात्मा हो, यज्ञ करे करावे। सब का शुभचिंतन करता हुआ मोक्ष प्राप्ति करे।

शश्वती—क्षत्रिय ?

मनु—जो दुखी, दीनों की रक्षा करे। यज्ञ का प्रचार करे। दान दे। पृथ्वी पर सुख का विस्तार करे।

शश्वती—वैश्य ?

मनु—जो धर्म से देश को, राज्य को और अपने को समृद्ध करे।

शश्वती—शूद्र ?

मनु—जो सेवा करे। सब की सेवा द्वारा देश को उन्नत करे।

नाभाग—मैं ब्राह्मण बनना चाहता हूँ महाराज ?

धृष्ट—मुझे क्षत्रियत्व स्वीकार नहीं है। इसमें व्यर्थ की हिंसा है।

नारिष्यंत—मैं तप करूँगा।

कुरूष—मुझे राज्य की इच्छा नहीं है। मैं ज्ञान प्राप्त करूँगा।

प्रांशु—मैं केवल वेदों का चिंतन करूँगा।

पृषध्र—मैं संसार से विरक्त होना चाहता हूँ। इस युद्ध ने मेरे विचार बदल दिये हैं।

मनु—तो क्या तुम सब लोग राज्य नहीं चाहते। सुख नहीं चाहते?

सब—नहीं।

इक्ष्वाकु—(**आगे बढ़कर**) मैं क्षत्रिय बनना चाहता हूँ। मैं राज्य करूँगा।

नाभानेदिष्ट—मैं क्षत्रिय हूँ। मुझे आज्ञा दीजिये।

शर्याति—मैं भी क्षत्रिय हूँ महाराज?

मनु—प्रजा जन? आप लोगों ने देखा, मेरे नौ पुत्रों में कुछ ब्राह्मण हो गये हैं वे आत्म-चिंतन द्वारा मोक्ष-प्राप्त करना चाहते हैं। और कुछ क्षत्रिय बन कर राज्य धर्म का पालन। मैं अपने ब्राह्मण पुत्रों को आज्ञा देता हूँ कि वे यथेष्ट मार्ग का अवलंबन करें। और क्षत्रिय इस भूमि पर राज्य शासन करें (**ब्राह्मणों से**) आप लोग इनकी सहायता कीजिये। ईश्वर सबका कल्याण करे।

(**इडा और बुध का आगे आना**)

इडा—मैंने आर्य बुध को अपना पति स्वीकार कर लिया है। हम दोनों ने गन्धर्व विवाह कर लिया है। हमको आशीर्वाद दीजिये।

मनु—(**हँसकर**) पुत्रि, तुम दोनों का कल्याण हो।

(**सूनृता, और शर्याति का प्रवेश**)

सूनृता—मैंने भी सुद्युम्न के साथ गंधर्व विवाह कर लिया है महाराज?

मनु—सुद्युम्न कौन है?

शर्याति—(**आगे बढ़कर**) मैं हूँ सुद्युम्न!

सूनृता—(देखकर) तुम सुद्युम्न हो अथवा शर्याति ?

इडा—(आगे बढ़कर) यह भी एक कथा है वस्तुतः सुद्युम्न नाम मैंने अपना पुरुष वेश धारण करते हुए रखा था। सूनृता मेरे वेश पर आसक्त थी। इसलिये यह विवाह सुद्युम्न रूप से शर्याति के साथ हुआ है। सूनृता ने स्वयं स्वीकार किया है ?

मनु—क्या तुम्हें यह विवाह स्वीकार है ?

बुध—इडा का पुरुष रूप शर्याति ही है सुद्युम्न नहीं। मैं (सूनृता से) विश्वास करता हूँ कि इसे कोई आपत्ति न होगी।

सूनृता—आश्चर्य है ?

मनु—तो तुमको स्वीकार है अथवा नहीं ?

सूनृता—(शर्याति की ओर देखकर मुस्कराती हुई) हाँ—

इक्ष्वाकु—शश्वती को मुझे अपनी पत्नी रूप में स्वीकार करने की आज्ञा दीजिये।

मनु—(हँसकर) मुझे प्रसन्नता है मेरे राजा होते ही विवाह होने लगे। मैं शश्वती को इक्ष्वाकु की पत्नी देखकर प्रसन्न हूँ।

(हर्ष घोष)

एक ऋषि—मैं प्रार्थना करता हूँ कि मेरी पत्नी अपाला मुझे स्वीकार करे।

अपाला—मैं अब विवाह बंधन में नहीं रहना चाहती। मेरा जी संसार से ऊब गया है।

मनु—अपाला को तुम पत्नी रूप में रखने के लिये बाधित नहीं कर सकते ऋषि वर !

वशिष्ठ—गंधर्व विवाह की प्रथा बन्द होनी चाहिये महाराज ?

मनु—हाँ, आप ठीक कहते हैं। साधारण अवस्था में वेद-मंत्रों द्वारा ही प्रतिज्ञा करके सबको विवाह बंधन में बँधना चाहिये। परन्तु सर्वत्र यह बंधन नहीं

किया जा सकता । विवाह दो प्राणों का बंधन है जिसका पुरोहित स्नेह है ।

मनु—मैं आज एक बात और कहना चाहता हूँ । (सब उत्सुकता से उधर देखते हैं) आज से इस देश का नाम 'आर्यावर्त' है ।

सब—आर्यावर्त की जय । महाराज मनु की जय ।

वासुकि—(आगे बढ़कर) महाराज, हम सब आर्य-धर्म स्वीकार करते हैं ।

मनु—मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ वासुकि । आज से तुम हमारे अंग हुए । तुम्हारे साथ किसी प्रकार का भेद भाव न रहेगा । चित्र कहाँ है ?

वासुकि—वह अपने साथियों के साथ दक्षिण की ओर चला गया । उसका विश्वास है कि हम लोग आर्यों के साथ मिलकर नहीं रह सकते ।

मनु—उसको भ्रम है । आर्य-धर्म विश्व का धर्म है उसी में संसार का कल्याण है वासुकि । आर्य-संस्कृति मानव की वास्तविक संस्कृति है । उसका प्रकाश जीवन का प्रकाश है, उसकी ज्योति आत्मा की, ईश्वर की ज्योति है । आओ हम सब लोग प्रार्थना करें—

(सब खड़े होकर)

अमृत मधुर सा विश्व-अभय हो

धरती, अंबर तारक में जो महा—प्राण का निहित नाद है
वही सत्य जीवन का साथी तीन काल में भी अबाध है
पीछे स्वार्थ, सत्य सन्मुख हो, जीवन में कर्तव्य, विनय हो

अमृत मधुरमय विश्व अभय हो

प्राण प्राण में, हृदय हृदय में गूँजें आर्य-जाति का गायन
रोम रोम में व्याप्त विश्व के दुःखों का हो सतत पलायन
अंतर अंतर में स्वर गूँजें यह जग सुखमय जीवनमय हो

अमृत मधुरमय विश्व-अभय हो

कुमार-संभव

मध्यकालीन संस्कृति का एक चित्र

कुमार-संभव के पात्र

सरस्वती	
शिव	
पार्वती	
गणेश	
महाराज चन्द्रगुप्त	सम्राट्
कालिदास	कवि
धन्वंतरि	वैद्य
राजामात्य	महामंत्री
गणदास	नाट्य शिक्षक
हरदत्त	,,

ध्रुवदेवी, कुवेर नागा, प्रभावती, विलासवती आदि

स्थान { हिमालय
अवंतिका

कुमार-संभव

(१)

[दो प्रासादों के बीच में एक उद्यान। उद्यान में कदली फल, नारंगी, ताल, तमाल, हिंताल, चंपक, अशोक, आम्र, जामुन के वृक्ष हैं। अधोपुष्पी, नागक, तुंबरी की लताएँ, चंपा, मालती, गेंदा, यूथिका, रजनीगंधा के पौधे हैं। बीच में स्फटिक निर्मित लघु सर है, जिसमें नील, रक्त, श्वेत, पीत कमल खिले हुए हैं। सरोवर के चारों ओर बैठने की स्फटिक शिलाएँ, उत्तर की तरफ़ लतामंडप, पूर्व और पश्चिम में वाटिका-विहार बने हैं। सरोवर के पास सारस, हंस, बतकों के जोड़े घूम रहे हैं। शंख और सीपी की बनी हुई प्रतोली में से राजपरिचारिकाएँ भिन्न प्रकार के कौशेय वस्त्र, अलंकार धारण किये आ जा रही हैं। परिचारिकाओ की वेणी नितम्ब तक लटकती। कंचुकी से स्तन बँधे हुए। नीचे कौशेय पट्ट। मस्तक में कस्तूरी तिलक, भुजाओं में अंगद, वलय, मणिबन्ध, गले में ग्रैवेयक। पैरों में चपली की तरह पादत्राण। अँगुलियों में रत्नजटित मुद्राएँ। एक प्रासाद से दूसरे प्रासाद तक जाने में थोड़ा ही मार्ग पार करना पड़ता है। एक प्रासाद महाराज चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का है दूसरा महारानी ध्रुवदेवी का। दो परिचारिकाएँ हाथों में फूल, मिष्ठान्न तथा शाटकों से युक्त ढके हुए थाल लिये आती हैं।

ये प्रासाद के साधारण द्वार हैं महाद्वार नहीं। दोनों द्वारों के पास दो प्रतिहार खड़े हैं। दूर से वाद्यों की ध्वनि आ रही है, जिसमें कई स्वर समवेत हैं। पहली परिचारिका, कौशेय-शाटिका से जिसके पैर उलझ गये हैं, और गिरना ही चाहती है। समय प्रातःकाल दस बजे।]

दूसरी परिचारिका—अरे वासन्ती, तनिक देखकर तो चलो। क्या सौन्दर्य इतना दुर्वह हो गया है ? यौवन ही जो ठहरा . (हँसती है)

वासन्ती—सखि ! क्या बताऊँ, तुम नहीं जानतीं यह कौशेय-पट्ट मेरे लिए भार हो गया है। यौवन तो भला क्या भार होगा ?

मधुरिका—यह हाथ में क्या सामग्री है ?

वासन्ती—आज कुमार का चालीसवाँ दिवस है, महारानी का शृंगार हो रहा है, इसीलिये ये जालपट्टक लिए जा रही हूँ।

मधुरिका—ओह, समझी। महाराज्ञी की परिचारिका का गौरव भी थोड़ा नहीं है। क्या इसीलिये आज नवपरिधान मिला है ?

वासन्ती—सब परिचारिकाओं को महाराज की ओर से एक एक रत्नहार दिये जाने की भी घोषणा हुई है न !

मधुरिका—सुनती तो हूँ। आह कितना सुन्दर दिन है आज तुम भी तो बहुत सुन्दर लग रही हो !

पहला प्रतिहारी—छवि फूटी पड़ रही है, साक्षात् महाश्वेता हों जैसे।

दूसरा प्रतिहारी—काश्मीर किन्नरी जो हुई। एक ये हैं कोंकण की श्रीमती लवंगलता।

मधुरिका—(तीक्ष्ण दृष्टि से देखती हुई) अपना रूप तो देखो, जैसे बाँस को वस्त्र पहना दिये गए हों।

पहला प्रतिहारी—यह बाँस अब शीघ्र ही बुहारी की सींक हो जानेवाला है।

दूसरा प्रतिहारी—प्रतीक्षा की भी कोई सीमा है वासन्ती। स्वयं महाराज भी

जब अनुरोध करके हार गए तब मेरी क्या सामर्थ्य है कि मधुरिका को मना सकूँ। हाँ, यदि मुझे एक क्षण को भी कविवर कालिदास का रूप मिल जाता फिर देखता कौन भुवनमोहनी मुझसे दूर भागती है।

पहला प्रतिहारी—बबूल का पेड़ कभी भी द्राक्षा-वल्लरी नहीं हो सकता।

दूसरा प्रतिहारी—आज दस वर्ष से तप कर रहा हूँ।

पहला प्रतिहारी—तप का फल मीठा होता है मन्थरक ! धैर्य धारण करो।

वासन्ती—तुमने सुना सखि ! आज कविवर महाराज और महाराज्ञी को वह ग्रंथरत्न भेंट करनेवाले हैं जो उन्होंने कुमार के जन्मोत्सव पर लिखा है। आज सायंकाल को वह कृत्य सम्पन्न होगा।

मधुरिका--हाँ, अभी अभी सुना है, परम भट्टारक महाराज राजामात्य से कह रहे थे कि कविवर स्वयं उस ग्रन्थ का कुछ अंश हमको सुनाएँगे। आज ही ग्रन्थ समाप्त होगा न, उसी के निमित्त आज उत्सव हो रहा है। ओह, कितने महान् कवि हैं कालिदास !

वासन्ती—साक्षात् सरस्वती उनके मुख से बोलती है। मेरे देश काश्मीर में एक से एक महान् पण्डित हैं, कवि हैं; किन्तु ऐसा रस तो किसी की कविता में नहीं पाया। उस दिन वे महाराज को 'कुमार-सम्भव' के कुछ अंश सुना रहे थे।

पहला प्रतिहारी—वह ब्रह्मचारी वाला अंश क्या ? वाह, कितना सुन्दर है।

वासन्ती—हाँ, वही। सुनकर मेरी आँखों से तो झर झर अश्रुपात होने लगा। पार्वती का कितना सुन्दर वर्णन है मधुरिका, और पाठ माधुर्य, मानों सरस्वती वीणा पर गा रही हो। इतना रस, पदाभिव्यक्ति, सरसता। मैंने देखा स्वयं महाराज उसे सुनकर कभी गद्‌गद हो उठते थे।

मधुरिका—कांचन को रत्न मिल गया है। हमारे महाराज का परम सौभाग्य

है कि ऐसे महान् कवि उनके राज्य में हैं ।

दूसरा प्रतिहारी—तो हमारे महाराज क्या कम हैं ? संसार में ऐसा महान् सम्राट् हुआ ही कौन है ?

वासन्ती—सम्राट् तो ऐसे हो गए होंगे किंतु कवि तो ऐसा हुआ ही नहीं ।

(महाराज और अमात्य का प्रवेश)

चन्द्रगुप्त—हाँ वासन्ती, तुम ठीक कहती हो । सम्राट् तो मेरे जैसे कई हो गए, किन्तु कालिदास जैसा कोई कवि नहीं हुआ । **(महाराज को आया जान सब चुपके से इधर उधर चली जाती हैं)** क्यों राजामात्य ?

राजामात्य—क्या निवेदन करूँ महाराज, दो मोदक दोनों ही अमृत मधुर ।

चन्द्रगुप्त—नहीं राजामात्य, वासन्ती यथार्थ कह रही है । यह मेरा सौभाग्य है । अच्छा देखो, आज हमारी सभा में कुछ असामान्य व्यक्ति ही आ सकेंगे, इसका ध्यान रखना । कविवर आज वह ग्रन्थ सम्पूर्ण करके लाने-वाले हैं । महाराज्ञी भी होंगी ।

राजामात्य—यथार्थ है प्रभो । इसके अतिरिक्त एक निवेदन यह है कि तक्ष-शिला, स्वात, पञ्चनद, मगध, उदयगरि में कुमार जन्म का उत्सव बड़े समारोह से मनाया गया है ।

चन्द्रगुप्त—ठीक है, राजा प्रजा की सम्पत्ति है । महामात्य, कच्छ और सिन्ध के विद्रोह की क्या अवस्था है ?

राजामात्य—महाराज विष्णुदास के पुत्र सनकानिक वंशी को सिंध में शत्रु का दमन करने भेजा है । उनका संदेश है कि प्रजा ने परम भट्टारक की प्रजा होना स्वीकार कर लिया है । स्वयं महाराज सनकानिक को प्रजा ने सहायता दी है । मांची के आम्रकार्दव नामक व्यक्ति ने कुमार जन्मोत्सव के उपलक्ष में अनेक संघाराम बनवाए हैं ।

चन्द्रगुप्त—बौद्ध और वैष्णव दो थोड़े ही हैं । मेरे राज्य में सब धर्म एक

समान हैं। महाकवि के ग्रन्थ के भेंट के उपलक्ष में उज्जयिनी की चमू, चमूप, बलाधिकृत, महाबलाधिकृत, बलाध्यक्ष, महाबलाध्यक्ष, समस्तसेनाग्रेसर, रणभाण्डागाराधिकरण तथा महासेनापति को एक मास का वेतन अधिक दिया जाय। कृषकों का एक मास का कर क्षमा किया जाय।

राजामात्य—जो आज्ञा, प्रभो।

चन्द्रगुप्त—संपूर्ण पारिषद्यों को कौशेय-पट्ट तथा एक एक रत्नहार भी। महामात्य ! (कुछ उदास हो जाते हैं)।

राजामात्य—महाराज कुछ चिन्तित हैं क्या !

चन्द्रगुप्त—हाँ, मंत्री अभी प्रातःकाल एक स्वप्न देखा तभी से व्यग्र हूँ।

राजामात्य—वराहमिहिर क्या कहते हैं ?

चन्द्रगुप्त—वे कहते हैं स्वप्न सत्य होगा।

राजामात्य—था क्या वह, महाराज का तो प्रताप ऐसा है कि दुःस्वप्न रह ही नहीं सकते। क्या था वह ?

चन्द्रगुप्त—देखता हूँ हमने उत्सव की आयोजना की है उसी समय एक मुनि आए हैं।

राजामात्य—मुनि का दर्शन सुखकर है।

चन्द्रगुप्त—नारद हैं मानों। आते ही बोले—'कल्याण हो राजन्' और देखो, उस समय उत्सव का भी सम्पूर्ण आयोजन हो।

राजामात्य—यह तो उन्होंने उचित ही कहा। उत्सव का आयोजन अवश्य होगा महाराज !

चन्द्रगुप्त—हाँ, मैंने कहा—'महामुने, प्रणाम करता हूँ'।

—मैंने पूछा—कहाँ से पधारे ? वे बोले—'आज कैसा उत्सव है महाराज ! मैं ऐसे ही घूमता चला आया। तुम्हारे राज्य में सब प्रजा प्रसन्न है, तुम धन्य हो राजन् !'

मैंने कहा—मुनिवर आपकी कृपा है। हाँ, आज कुमार की उत्पत्ति का चालीसवाँ दिन है। आज महाकवि कालिदास, महाराज्ञी ध्रुवदेवी को 'कुमार सम्भव' भेंट करनेवाले हैं, उसी का उत्सव है महामुने। आपने वह महाकाव्य सुना ? बड़ा सुन्दर काव्य है मुनिश्रेष्ठ ! जीवन में जो विजय मैंने प्राप्त की है, जो श्रेष्ठ कार्य किये हैं, वह कालिदास के एक श्लोक की बराबरी नहीं कर सकते। वे साक्षात् सरस्वती के अवतार हैं। अभी पन्द्रह दिन हुए वे कुछ अंश हमको सुना गए थे, आज वह समाप्त करने वाले हैं। इस पर मुनि बोले—

'वह काव्य तो स्वामिकार्तिकेय के जन्म से सम्बन्ध रखता है न ? मैंने उसके कुछ अंश सरस्वती से स्वयं सुने हैं। उस दिन वे भगवान् शंकर और पार्वती को सुना रहीं थीं।' मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, मैंने कहा हाँ, ऐसा, फिर उन्होंने क्या कहा ? मुनि बोले—

'क्या कहा होगा राजन् ? तुम क्या समझते हो,' इस पर मैंने कहा—

भगवान् शंकर तो अवश्य प्रसन्न हुए होंगे। वह रचना ही ऐसी है। और कालिदास स्वयं शंकर के उपासक हैं। मुनि एकदम उदास से होकर कहने लगे—

'हूँः, रचना ऐसी ही है, हाँ अच्छी है।' मैंने इसके बाद आग्रह किया—कृपा करके बताइये आपकी क्या सम्मति है ? इस पर मुनि मेरी बात का उत्तर न देकर बोले—

'राजन्, मैं सरस्वती को खोज रहा हूँ। इधर वे कई दिनों से मिली नहीं हैं। ब्रह्मा, हमारे पिता उनसे मिलने के लिये चिन्तित हैं। स्वर्ग में वह कहीं नहीं मिल रही हैं। न जाने कहाँ चली गईं, यहाँ भी नहीं हैं। कालिदास के आश्रम में भी नहीं हैं। और कालिदास पिछले एक सप्ताह से ध्यान मग्न हैं।'

इतना कहकर वे अंतर्ध्यान हो गये।

उसके बाद निद्रा भंग हो गई। संभ्रम संज्ञा प्राप्त करके मैंने सोचा यह मैंने क्या देखा ? यह कौन थे—नारद ? कालिदास एक सप्ताह से ध्यानमग्न हैं। प्रतिहारी से ज्ञात हुआ सचमुच वे ध्यानमग्न हैं।

(घूमते हुए लौट कर) मैं कालिदास को देखना चाहता हूँ।

राजामात्य—मैं संदेश भेजता हूँ। पृथ्वीनाथ ?

चन्द्रगुप्त—नहीं, मैं स्वयं जाऊँगा और देखूँगा इस स्वप्न का क्या प्रभाव कवि पर पड़ा है। वस्तुतः राजामात्य, लौकिक साहित्य को प्रोत्साहन देना भी मेरे जीवन का एक लक्ष्य है। मैंने कविवर से कहा है कि वे कुछ नाटक भी लिखें। ...... इस समय तक जो नाटक लिखे गये हैं वे मुझे संतुष्ट न कर सके।

राजामात्य—भास के नाटकों में चरित्र विकास, संवाद-सौन्दर्य होते हुए भी रस परिपाक की त्रुटि है, ऐसा मैंने अनुभव किया है।

चन्द्रगुप्त—मैं चाहता हूँ कि कालिदास ही नाटक लिखें। निश्चय ही उनके नाटक महा कवि भास के नाटकों से श्रेष्ठ होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

राजामात्य—उस दिन खेले जाने वाले उनके नाटक के निदर्शन को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। एक तरह से 'स्वप्न वासव दत्ता' में जीवन आ गया।

चन्द्रगुप्त—माणिक्य सब जगह चमकता है राज्यमात्य। उनकी कविता में जितनी स्वाभाविकता है, जितना रस परिपाक है, जितना प्रवाह है, वह मुझे बहुत कम अन्यत्र मिला है राजामात्य ?

राजामात्य—उनकी कविता को सुनकर ऐसा ज्ञात होता है मानो कोई अदृश्य शक्ति बोल रही है। वे स्वयं पढ़ते पढ़ते तन्मय हो उठते हैं।

चन्द्रगुप्त—वे अपूर्व हैं।

(चले जाते हैं)

Kidar nath-B.A.

(२)

[कैलास शिखर के ऊपर देवदारु निर्मित एक कुटीर। उसके बाहर तृणासन पर पार्वती बैठी हैं। सामने गणेश उनके घुटनों से लगे ऊँघ रहे हैं। कभी-कभी सूँड़ उठाकर इधर उधर हिला देते हैं, कभी मुँह चलाते हैं। कुछ दूर पर सरस्वती बैठी हैं सामने का हिम-खण्ड रिक्त है। वह शिव का सिंहासन है। ज्ञात होता है दोनों में कुछ गरमागरम विवाद हो चुका है। बात बढ़ जाने पर गणेश की निद्रा भंग हो जाती है, वे सिर उठाकर इधर उधर देखने लगते हैं और कोई विघ्न न जान कर फिर ऊँघने लगते हैं। कभी कभी वीरभद्र त्रिशूल लेकर इधर उधर निकल आते हैं और पार्वती के सामने अपने अस्तित्व का भान कराकर चले जाते हैं। दूर पर बैठा सिंह कभी कभी एक दहाड़ लगाता हुआ अपना मुँह चलाकर शान्त हो जाता है। पार्वती रु-मृग के चर्म का परिधान ओढ़े हैं जो कोरों से बँधा हुआ है। काले मृग के चर्म से उनकी मुख-शोभा द्विगुणित हो रही है। सिर के बाल बिखरे हुए। रत्नों की माला गले में। इससे सूर्य के प्रकाश में वह माला कभी-कभी इतनी चमक जाती है कि पार्वती का मुँह महा-प्रकाश के अतिरिक्त कुछ भी नहीं देख पड़ता। सरस्वती रक्त-कौशेय की शाटिका पहिने आभूषणों से सुसज्जित। पार्वती का छौना सरस्वती को कमल का पुष्प-गुच्छ जानकर उन्हें चबाने तथा चाटने दौड़ पड़ता है। पार्वती उसे हटा देती हैं। दूर भूत प्रेतों की बातचीत की अस्पष्ट ध्वनि सुनाई दे रही है।]

पार्वती—तुम्हीं सोचो, जिसने मेरे सम्बन्ध में ऐसा वर्णन किया हो उसे मैं कैसे क्षमा कर सकती हूँ, चाहे वह स्वयं इन्द्र ही क्यों न हों।

सरस्वती—किन्तु तुम्हें जगन्माता भी तो उसने माना है। मुझे दुःख है तुम व्यर्थ ही नारद की बातों में आगईं, उसका तो कार्य ही परस्पर झगड़ा कराना है माँ !

पार्वती—इसमें नारद का कोई दोष नहीं है। यह तो स्पष्ट सत्य है। क्या तुम उचित समझती हो कि किसी के सम्बन्ध में इतना शृंगार वर्णित किया जाय और वह अनुचित न माने !

सरस्वती—सुन्दर को सुन्दर कहने में दोष क्या है, यही मैं नहीं जान सकी। स्त्री के यौवन की सार्थकता उसके रूप में, उसके सौंदर्य में, उसके विलास में है। पुरुष के यौवन में वीरत्व है, साहस है, कठिन से कठिन कार्य करने की क्षमता है किन्तु स्त्री की चरम सार्थकता मातृत्व में है और मातृत्व से पहले यौवन की उद्दाम प्रवृत्ति का वही रूप है जिसके लिये प्रत्येक ललना जन्म जन्म से आकांक्षा करती है। वरदान माँगती है। इसके अतिरिक्त तुम्हारे विवाह के द्वारा स्कन्द की उत्पत्ति के लिये विश्व की जड़-चेतन, अजर-अमर सभी शक्तियों ने कितनी घोर प्रार्थना की है, यह भी तो किसी से छिपा नहीं है। मैं तुमसे सत्य कहती हूँ कि कलिदास की यह रचना आप्रलय अमर रहेगी। केवल एक बार तुम्हारे प्रसन्न होने की आवश्यकता है माँ !

पार्वती—मैं कालिदास को जानती हूँ। कई बार हम दोनों ने उसकी स्तुति से प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया है, और भगवान् तो उन पर इतने प्रसन्न हैं कि व्यास, वाल्मीकि के बाद उन्हें ही स्मरण करते हैं।

सरस्वती—यह भगवान् का महान् अनुग्रह है। उस दिन 'कुमार-संभव' का प्रथम और दूसरा सर्ग जब मैंने सुनाया तो वे गद्‌गद हो उठे और तुम भी कम प्रसन्न नहीं थीं।

पार्वती—तुम्हें ज्ञात है विधाता, तुम्हारे पिता कालिदास को उत्पन्न करने के कितने विरुद्ध थे ?

सरस्वती—वे तो हुए वृद्ध। उनसे कोई क्या कहे, उस कवि का होना विश्व-कल्याण के लिये परम आवश्यक है।

पार्वती—नहीं, कहते थे व्यास और वाल्मीकि के बाद उस कोटि का कोई भी कवि पैदा नहीं किया जा सकता।

सरस्वती—किन्तु व्यास और वाल्मीकि से हम उसकी समता ही कहाँ कर रहे हैं ? भगवान् वेदव्यास को तो मैं जानती हूँ वे तो साक्षात् विष्णु के अवतार हैं।

गणेश—(**एकदम चेतन होकर**) माँ, व्यासजी आ गए क्या ? उनसे कह दो मैं सो रहा हूँ। स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है। प्राण ही चूस लिये उन महानुभाव ने तो।

पार्वती—नहीं पुत्र, उनकी बात चल पड़ी केवल।

गणेश—नहीं, नहीं, मुझसे अब वह काम न होगा। उनकी वाणी तो रुकना जानती ही नहीं। पवन के समान अव्याहत। काल के समान अणु-परमाणु तथा महत्ता से युक्त। आज भी जब स्मरण हो जाता है तब मुझ विघ्नहर को भी एक विघ्न उपस्थित हो जाता है। तुम जानती हो जब मैं महाभारत लिखने बैठा तब मैंने क्या कहा था ?

सरस्वती—देखो भैय्या, अब वह समय नहीं आवेगा। तुम भी तो जानते थे कि मेरे जैसा कोई लेखक नहीं। अभिमान नहीं करना चाहिये।

गणेश—अभिमान की बात नहीं। जब महाभारत लिखने का प्रश्न आया तो मैंने सोचा कि व्यास जी को चमत्कार दिखाने का यह अच्छा अवसर है। इसलिये कह बैठा—'देखिये, व्यास जी यदि आप रुक गए तो मैं आगे नहीं लिखूँगा।'

पार्वती—फिर भी न जाने तूने इतना कैसे लिख लिया। हाथ दुख गए होंगे पुत्र ? (उनके हाथ सहलाती हैं) हाँ, फिर क्या हुआ ?

सरस्वती—आगे का रहस्य मैं बतलाती हूँ। जब गणेश का आग्रह उन्होंने सुना तो चुप हो रहे और मेरी प्रार्थना करने लगे। एक बार मन में आया कि कोई और लेखक खोजें। व्यास को उस समय बड़ी ग्लानि हुई। जिनकी वाणी वेदों का विस्तार करते न रुकी, पुराणों का उपबृंहण करते न परास्त हुई, वे इन गणेश के सामने धैर्य खो बैठे। मैं उस समय पिता के पास बैठी थी। वे एक वाणी से चारों मुख से बोल उठे 'अब ! महाभारत अवश्य लिखा जाना चाहिये।' मैंने उत्तर दिया— मैं जाती हूँ। आकर जो मैंने देखा तो व्यास चुप बैठे थे। मैंने कहा— मैं आपकी सहायता करूँगी। कूट बोलिये और गणेश से कहिये कि समझकर लिखें। (हँसती है)।

गणेश—कूट, वह भी एक भयंकर काम था। मुझे एकदम सम्पूर्ण कोशों को छान जाना पड़ता था। कभी सूँड से माथा खुजलाता, कभी उसे दबाता तब कहीं जाकर श्लोकों के अर्थ समझ में आते। किन्तु माँ, व्यास सचमुच व्यास हैं, यह मानना पड़ेगा। महाभारत में सहस्रों शब्द तो ऐसे हैं जिनको उन्होंने प्रकृति-प्रत्यय लगाकर तत्क्षण बनाया है। अच्छा, तो यह आपकी करामात है, अब समझा ! यह बात उस समय ज्ञात होती तो मैं भी व्यास को वह चकमा देता कि तुम्हें भी जाकर ब्रह्मा से ही पूछना पड़ता।

सरस्वती—यह न कहना भैया, व्यास से छिपा ही क्या है उस काले कलूटे से।

गणेश—फिर भी मैं तुमसे डरता हूँ जीजी ! अब न जाने क्या पचड़ा ले बैठीं। मालूम है रात भर पिता और माँ में विवाद होता रहा है। भला, नारद जी क्यों क्रुद्ध हैं। माँ तो केवल नारद जी के कहने से क्रुद्ध हैं।

पार्वती—तू क्या जाने कि मैं नारद के कहने से ही क्रुद्ध हूँ। प्रत्येक को अपनी मान-मार्यादा प्रिय होती है पुत्र ?

सरस्वती—मुझे तो यह खेद है कि ऐसा सुन्दर काव्य अधूरा रह जायगा माँ ?

पार्वती—और मुझे यह प्रसन्नता है कि मैंने कवि को उसकी धूर्तता का दण्ड दे दिया।

गणेश—यदि वे मेरा नाम लेते तो मैं कभी ऐसे सुन्दर काव्य को अपूर्ण न रहने देता।

सरस्वती—तो फिर तुम्हारा नाम दिलवा दूँ पहले ? मैं क्या करूँ। पिता जी कहते हैं कि मैं वृद्ध हो गया संसार का निर्माण करते करते, कोई मेरा वर्णन ही नहीं करता। तुम कहते हो मेरा नाम नहीं है। याद रक्खो गणेश, भक्ति की पुस्तकों में, साधारण कथाओं में, पूजा पाठ के ही तुम काम के हो, महान् शास्त्रों से तुम्हारा क्या सम्बन्ध ?

गणेश—(हँसकर) अच्छा, भला नारद क्यों क्रुद्ध हैं ?

पार्वती—नारद मेरा भक्त है। मेरा सौंदर्य-वर्णन, रति-विलास उससे नहीं देखा गया, इसलिये।

गणेश—मिथ्या है **(स्कन्द का प्रवेश। सरस्वती और माँ को प्रणाम करके)**

स्कन्द—देखो माँ, नारद की यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती।

पार्वती—क्या ?

स्कन्द—सुना है तुमने 'कुमार-सम्भव' को अपूर्ण रहने का शाप दिया है। मेरे ऊपर एक ही तो काव्य लिखा गया और वह भी अधूरा। मुझसे नारद कह रहे थे कि 'चन्द्रगुप्त' के पुत्र का नाम 'कुमार' रक्खा गया है। एक तरह से तुम्हारी समानता की गई है—यह बुरी बात है। क्या चन्द्र-गुप्त का पुत्र महादेव के पुत्र स्कन्द के समान हो जायगा ?' इस तरह कह कर मुझे उभार रहे थे। किन्तु 'स्कन्द' या 'कुमार' मेरा ही तो नाम नहीं

है। जब मैंने क्रोध में जाकर कालिदास के पास रखी वह पुस्तक पढ़ी तो मेरा हृदय गद्गद हो गया। सुना है, तुम्हें वह शृंगार के नाम से बहका गए हैं।

पार्वती—तुम सब अपना अपना स्वार्थ देखते हो। स्कन्द इसलिये चाहता है कि उसके ऊपर एक काव्य-निर्माण हुआ। गणेश चाहता है कि यदि उसका नाम लिया जाता तो मेरे शाप के बाद भी ग्रन्थ पूर्ण हो जाता। सरस्वती इसलिये चाहती है कि यह हुई रसिक कला, साहित्य की स्रोत, इसे साहित्य की अपूर्णता रुचिकर नहीं है। भगवान् शंकर अपने भक्त का कार्य पूर्ण करने पर तुले हैं। अब भी वे कदाचित् वहीं हों।

(शंकर का प्रवेश)

शंकर—हाँ देवी, आज एक सप्ताह से कालिदास चिन्तित है। आज ही वह ग्रन्थ चन्द्रगुप्त को भेंट किया जायगा। ध्रुवदेवी ने अपने पुत्र का नामकरण कुमार ही किया है। मैंने कई बार यत्न किया कि वह आगे लिखे, किन्तु लेखनी रुक जाती है, छंद ठीक नहीं बन पाते। वह रस भी नहीं है। मैंने स्वयं एक दो श्लोक लिखने का यत्न किया तो रेखाएँ खिंचकर रह गईं। तुम उसे क्षमा करो देवि! (सरस्वती की ओर देखकर) अरे, सरस्वती तुम यहाँ क्या कर रही हो?

सरस्वती—माँ से अभिशाप लौटाने की प्रार्थना करने आई थी किन्तु ये मानती ही नहीं। (गणेश और स्कन्द सिटपिटाते से भाग जाते हैं)।

पार्वती—आप गंगा को लिये भ्रमण करते रहें, भक्तों को वरदान देते रहें। आपको क्या, किसी का मान हो अथवा अपमान।

सरस्वती—मैं जाती हूँ। आज कवि के जीवन, मरण का प्रश्न है, दया कीजिये भगवन्।

शंकर—उज्जयिनी से आते हुए ध्यान आया विष्णु से मिलता चलूँ। कदाचित् कोई समस्या का समाधान मिल जाय। उन्होंने भी वह काव्य पढ़ा है। और स्पष्ट तो यह है उसके अंश सुनकर लक्ष्मी को ईर्ष्या होने लगी कि उनका वर्णन कवि ने क्यों नहीं किया। विष्णु तो गद्गद हो उठे हैं। कह रहे थे वाल्मीकि के बाद ऐसा काव्य बना ही नहीं। विधाता को यह दुःख है कि कालिदास का निर्माण ही क्यों किया गया? इसी से सम्पूर्ण स्वर्ग में गड़बड़ी मची है। बेटी सरस्वती, विधाता कह रहे थे कि उन्होंने तुम्हारे ही कहने से कालिदास का निर्माण किया है।

सरस्वती—सत्य है भगवन्, मैं चाहती थी कि साहित्य, कला का प्रचार करने के लिये मनुष्यों में एक ऐसा व्यक्ति उत्पन्न किया जाय जो लौकिक साहित्य को प्रोत्साहन दे सके।

पार्वती—मनुष्य सदा से देवताओं का विरोधी रहा है। उसने हमारे प्रति विद्रोह रचकर अपना महत्त्व स्थापन करने का प्रयत्न किया है। वह देवताओं के नाम पर अपने राजाओं की स्तुति करता है। यह क्या अच्छी बात है, क्यों नहीं ध्रुवदेवी का ही उसने वर्णन किया?

शंकर—संसार आश्रय चाहता है, उसकी शक्तियाँ ससीम हैं। मृत्यु, जीवन, यश, अपयश उसके हाथ में नहीं हैं, इसीलिये वह डरता है और कालिदास तो मेरा परम भक्त है, तुम्हारा भी। तुम अपना शाप लौटा लो देवि?

पार्वती—नाथ, यह मेरा मत है, मेरा विश्वास है कि कालिदास ने उचित नहीं किया।

सरस्वती—माँ, आप आद्याशक्ति हैं, विश्वधात्री हैं, जगन्माता हैं। इस संसार का प्रणयन आपसे हुआ है। अतएव मानवोचित इन छोटी बातों में आपको नहीं आना चाहिये। आप तीनों काल, त्रिप्रकृति हैं, फिर राजस

से इतना भय क्यों ? (जाने लगती है)

पार्वती—(मुस्कराकर) सरस्वती, तू बड़ी चतुर है । अच्छा, मैं सोचकर उत्तर दूँगी ।

शंकर—मैं समाधिस्थ होने जा रहा हूँ, देवि ।

पार्वती—नाथ, दया कीजिये। ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी जो आप समाधिस्थ होने जा रहे हैं ? एक साधारण व्यक्ति के लिये इतना कष्ट ? कालिदास जैसे अनेकों जीव संसार में हैं । उनके लिये भी तो...(शंकर चले जाते हैं) ।

सरस्वती—(लौटकर) आओ, मैं तुम्हें दिखाऊँ । (पार्वती सरस्वती खड़ी हो जाती हैं) दोनों दूर देखती हैं—दृश्य बदलता है—एक राजमार्ग—देखो, वह राजमार्ग है । इस समय तुम वर्तमान, भविष्यत् सब देख रही हो । (दोनों देखती हैं । मार्ग में कालिदास की मूर्ति है । छाया-चित्र की तरह महाराज चन्द्रगुप्त कालिदास का अभिवादन कर रहे हैं । लोग आते और प्रणाम करते जाते हैं) ।

पार्वती—ये कौन हैं ?

सरस्वती—सम्राट् चन्द्रगुप्त । (फिर कुमार गुप्त आते हैं । वे भी कालिदास को प्रणाम करते हैं) ।

पार्वती—सम्राट् कुमारगुप्त ।

लिप्तामधुद्रवेणासन् यस्य निर्विर्षया गिरः
तेनेदंवर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम् ।

(जिस महा कवि की वाणी मधु के रस से आलुप्त थी उसी कालिदास ने वैदर्भी रीति का मार्ग दिखाया है) (प्रणाम करके चले जाते हैं ।)

पार्वती—यह कौन है ?

सरस्वती—महान् कवि दण्डी ।

(एक व्यक्ति आते हैं, कालिदास को प्रणाम करते हुए—)

निर्गतासुन वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु
प्रीतिर्मधुर सांद्रासु मंजरीष्विव जायते ।

(कविवर कालिदास की आम्र-मंजरी के समान मीठी और सरस सूक्तियों को सुनकर किसके हृदय में आनन्द का उद्रेक नहीं होता ?)

पार्वती—यह कौन है ?

सरस्वती—जिनके वर्णन के सामने संसार का वर्णन उच्छिष्ट है, वे महाकवि वाण। (एक और व्यक्ति आते हैं)

अस्मिन्निति विचित्र कवि परंपरा वाहिनि संसारे
कालिदास प्रभृतयोद्वित्राः पंचषा वा महाकवयः गण्यन्ते ।

(इस विचित्र कवि परंपरायुक्त संसार में कालिदास के समान दो तीन या अधिक से अधिक पाँच छः कवि ही गिने जा सकते हैं ।)

पार्वती—ये कौन हैं ?

सरस्वती— ध्वन्यालोक के रचयिता आनंदवर्धन ।

(एक और व्यक्ति आते हैं, प्रणाम करके—)

पुराकवीनां गणना प्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः
अद्यापि तत्तुल्य कवेरभावादनामिका सार्थवती वभूव ।

(पहले कवियों की गणना करने पर कालिदास का नाम कनिष्ठिका उँगली पर लिया जाता था और आज उनके समान किसी के न होने से वह अनामिका के समान (अद्वितीय) हो गए हैं ।)

(एक और पण्डित प्रणाम करके—)

एकोऽपिजीयते हन्त कालिदासो न केनचित्,
शृंगारे ललितोद्गारे कालिदास त्रयी किमु ?

(संसार कालिदास को एक बात भी समता नहीं कर सकता, शृंगार और सुललित पद्य रचना में तो उनका कहना ही क्या ?)

पार्वती—ये कौन हैं ?

सरस्वती—काव्य-मीमांसाकार राजशेखर ।

(एक हैट, बूट, पतलून धारी व्यक्ति आकर प्रणाम करके—)

वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यत् ,
पश्चान्यन्मनसो रसायन मतः संतर्पणं मोहनम् ,
एकीभूतमभूत पूर्वमथवा स्वर्लोक भूलोकयोः ।
ऐश्वर्यं यदि वांच्छसि प्रिय सखे, शाकुन्तलम् सेव्यताम् ।

(ग्रीष्म और वसन्त के पुष्प और फल तथा मन को प्रसन्न करनेवाले मोहक जितने रस हैं, उनको तथा स्वर्गलोक तथा भूलोक के अभूतपूर्व ऐश्वर्य को हे मित्र, यदि तुम एकत्र देखना चाहते हो, तो कलिदास के नाटक शकुन्तला को पढ़ो ।)

पार्वती—ये कौन हैं ?

सरस्वती—जर्मनी के कवि गेटे । वह देखो असख्यों नर-नारियों, बालकों वृद्धों के करों में कालिदास की पुस्तकें हैं, वे सब पढ़ते जा रहे हैं ।

पार्वती—मैं समझती थी यह साधारण व्यक्ति होगा । यह तो सचमुच महान है ।

(एक व्यक्ति हाथ जोड़कर खड़ा है—)

मनोहारिणीं कुमार-संभव कथां गायता यावत्तौ,
स्तूयेते स्म कवीश्वर ? भवता गौरि गिरीशौ भगवन्तौ ।
तस्थुः परितः प्रभया सर्वे शान्ततमाश्च ततोमंदम्,
सायंतन्यो नीरदमाला आचक्रमिरे गिरिशिखरम् ।

पार्वती—ये कौन हैं ?

सरस्वती—महाकवि रवीन्द्रनाथ ।

(दूर से एक व्यक्ति गाता चला आता है—)

विश्वभारती कल्पलता के अमर सुमन मकरन्द अमंद,
युग युगान्त का तिमिर चीरकर हुए प्रकाशित जिनके छंद,
नग अधिराज शिखर गौरव से जिनके गाते गीत ललाम,
कविकुल गुरु उन वश्यवाक् श्री कालिदास को सतत प्रणाम ।
अमर-भारती वीणा-वादिनि, जिनको पा कृतकृत्य हुई,
कालत्रय की प्रकृति भाव ले शब्द शब्द की भृत्य हुई,
अति तेजस्वी अमर, यशस्वी, अमर विधाता, अति अभिराम,
उस प्रकाश को, उस विकास को, कालिदास को सतत प्रणाम ।

पार्वती—सुन्दर, कालिदास वस्तुतः महान् हैं। मुझे खेद है कि मैंने ऐसे व्यक्ति को शाप दिया। (**पार्वती चिंता मग्न खड़ी रहती है**)।

सरस्वती—(**स्वगत**) कदाचित् कुछ काम बन जाय। कालिदास, मैं तुम्हारे लिये जो भी कर सकती थी, कर रही हूँ। यद्यपि मुझे तुम्हारे वर्णन में कोई आपत्ति नहीं है। (**पार्वती से**) क्या सोच रही हो माँ ?

पार्वती—(**हँसकर**) सोचती हूँ एक बार शंकर से फिर विवाह होता !

सरस्वती—(**हँसकर**) एक बार फिर यौवन के दिन लौटते क्यों !

पार्वती—देवताओं के बूढ़े न होने पर भी इच्छाएँ तो बुढ़ा जाती है सरस्वती ?

सरस्वती—प्राणी की साधारण इच्छाएँ ही बूढ़ी होती है और देवताओं को तो कुछ भी अप्राप्य न होने से उनके इच्छाएँ होती ही नहीं माँ ! कालिदास के संबन्ध में फिर तुम्हारा क्या मत है ?

पार्वती—शाप नहीं लौट सकता। हाँ, मैं आशीर्वाद देती हूँ वह काव्य अधूरा रहकर भी विश्व-साहित्य का उज्ज्वल रत्न होगा। चलो। कालिदास, तुम महान हो।

सरस्वती—(**सोचती हुई**) चलो, यह मेरा काम है तुम्हारा नहीं।

(३)

[कालिदास का निवास प्रसाद। पहले दृश्य में दिखाए गए उद्यान के समान। जहाँ छहों ऋतुएँ निवास करती हैं। उद्यान में अनेक प्रकार के पुष्पों, फलों से लदे वृक्ष। पास ही वाटिका। उत्तर को ओर क्रीड़ा पर्वत, पूर्व की ओर वापी। तथा अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों से युक्त। क्रीडा-पर्वत के नीचे लताच्छादित वाटिका में महाकवि वर्तमान हैं। लता की यवनिका बनी हुई है। जो दूर-से दिखाई देती है। उससे कुछ दूर हटकर स्वर्ण-स्यन्दिका पर विलासवती मौन उदास बैठी है। विलासवती केशर के रंग सी मधुर, कृश-शरीर वाली रमणी है। नखशिख मानों विधाता ने विशेष रूप से गढ़कर बनाए हैं। केश-राशि बिखरी हुई। नेत्र ज्योतिहीन फिर भी मनोज्ञ। कभी चिन्ताधिक्य के कारण भ्रमण करने लगती है, कभी बैठ जाती है। परिचारिका मधुपात्र लिए खड़ी है।]

परिचारिका—(कुछ आगे बढ़कर) लीजिये, थोड़ा सा मधुपान कर लीजिये, चित्त स्वस्थ हो जायगा देवि, आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है।

विलासवती—नहीं, मदनिके ले जा। मेरा चित्त स्वस्थ नहीं है। न जाने। कविवर को क्या हो गया है ! वे पिछले सप्ताह से बहुत ध्यान मग्न हैं !

परिचारिका—यह तो मैं देख रही हूँ। वैद्यवर धन्वन्तरि ने कोई उपचार नहीं बताया ?

विलासवती—सब कुछ कर चुकी हूँ, सब उपाय व्यर्थ गए। वे तन्मय हैं बोलते भी नहीं। मैं जीवित न रह सकूँगी मदनिके, यदि कवि को कुछ हो गया। ओः ऐसी कल्पना करते ही प्राण निकले जा रहे हैं। (दौड़ा हुआ प्रतिहारी आता है।)

प्रतिहारी—महाराज महाराज प...धार...रहे हैं देवी ?

विलासवती—महाराज ! (उठकर) कहाँ हैं ?

परिचारिका—(**मधुपात्र लता की ओट में रखकर खड़ी हो जाती है, महाराज धन्वन्तरि वैद्य के साथ आते हैं । विलासवती और परिचारिका दोनों नतमस्तक होकर खड़ी हो जाती हैं ।**)

चन्द्रगुप्त—कहाँ हैं कवि ?

(**विलासवती लताच्छादित वाटिका की ओर संकेत करती है ।**)

चन्द्रगुप्त—मैं कवि का दर्शन करना चाहता हूँ ।

विलासवती—देवाधिदेव, आज्ञा नहीं है । कवि व्यस्त हैं ।

चन्द्रगुप्त—आज्ञा नहीं है, किसकी आज्ञा नहीं है ?

विलासवती—क्षमा कीजिये देव, कवि किसी से मिलना नहीं चाहते ।

चन्द्रगुप्त—किन्तु मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ ।

(**विलासवती चुप रहती है, चन्द्रगुप्त स्यंदिका पर बैठ जाते हैं**)

चन्द्रगुप्त—तुम जानती हो, आज कविवर महासम्राज्ञी को वह ग्रंथ भेंट करने वाले हैं ?

विलासवती—जानती हूँ देव ?

चन्द्रगुप्त—मैं जानना चाहता हूँ उस काव्य का क्या हुआ ?

विलासवती—वह अपूर्ण है ।

चन्द्रगुप्त—(**आश्चर्य से**) अपूर्ण है ?

विलासवती—जी, उसी के कारण वे आज एक सप्ताह से अस्वस्थ हैं ।

धन्वन्तरि—महाराज, मैं निवेदन कर चुका हूँ कि कालिदास को कोई शारीरिक कष्ट नहीं है, केवल कोई मानसिक चिन्ता है । उसके लिये मैंने कई प्रयोग किये किन्तु सब व्यर्थ हुए ।

चन्द्रगुप्त—(सोचकर) अच्छा देखो, कवि किस दशा में हैं ! (विलासवती जाती है और लौटकर)

विलासवती—(सप्रसन्न) महाराज वे लिख रहे हैं। मेरे पहुँचने की आहट भी उन्होंने नहीं सुनी।

चन्द्रगुप्त—दीखते तो स्वस्थ थे न ?

विलासवती—मुख तो प्रसन्न दिखाई देता था। ओः वे तो सचमुच इस समय पूर्वावस्था में दिखाई दिये। ज्ञात होता है काव्य लिखा जा रहा है। महाराज, मैं पिछले एक सप्ताह से एक क्षण के लिये भी उनके पास से नहीं हटी हूँ। जब वे चिन्ता करने या लिखने की चेष्टा करते तो उनके मुख पर स्वेद-बिन्दु झलक उठते, तब मैं स्वयं उन्हें पोंछ देती थी। यथा समय मधु अपने करों से पिलाती रही हूँ देव ?

चन्द्रगुप्त—देवि, तुम धन्य हो जिसने कवि को इतना अधीन किया है।

विलासवती—आः वह कितना सुख का समय होगा जब मैं उनके वीणा-विनिन्दित स्वर से आगे की कथा सुनूँगी ! महाराज, यह न जाने मेरे पूर्व जन्म के कौन से सौभाग्य का फल है कि मेरे ऊपर कविवर ने अपने कृपा-कण बरसाए।

चन्द्रगुप्त—मैं स्वयं सोचकर गर्वोन्मत्त हो उठता हूँ कि कालिदास मेरे राज्य में हैं। यह मेरा और इस युग का सौभाग्य है।

(कालिदास कुमार संभव का एक श्लोक गुनगुनाते हैं)

हृदये वससीतिमत्प्रियं यदवो चस्तदवैमिकैतवम्,
उपचार पदं न चेदिदं त्वमनंग, कथमक्षतारतिः।

(पति कामदेव के भस्म होने पर विलाप करती हुई रति कहती है—'तुम तो कहा करते थे तू मेरे हृदय में सदा बसती है, परन्तु अब मुझे ज्ञात हुआ

कि ये सब बनावटी बातें थीं। यह केवल मुझे प्रसन्न करने के लिये कहते थे नहीं तो आपके नष्ट हो जाने पर मैं कैसे अक्षत रहती ?')

चंद्रगुप्त – (**सस्वर पाठ सुनकर**) कितना सुन्दर श्लोक है ?

विलासवती—(**आवृत्ति करके**)

हृदये बससीति मत्प्रियंयदवोचः तदवैमिकैतवम्

उपचार पदं न चेदिदं त्वमनंग, कथमक्षता रतिः।

धन्वंतरि—प्रवाह चल पड़ा है। महाराज, कवि का स्वास्थ्य उसकी कविता है। यह भी एक प्रकार का ज्वर है, जब तक उद्गार के रूप में निकल नहीं जाता तब तक उसे शांति नहीं मिलती।

चंद्रगुप्त—तुम ठीक कहते हो धन्वंतरि, कविता निर्झरिणी के समान है, जो बहने के पश्चात् ही शांत होती है। विलासवती, मैं कवि से मिलूँगा।

धन्वंतरि—महाराज, अपराध क्षमा हो। यह अवसर उनके पास जाने का नहीं है। वे कविता प्रणयन में मग्न हैं।

चंद्रगुप्त—(**उदास होकर**) अच्छा विलासवती, कवि का विशेष ध्यान रखना। इसके अतिरिक्त आज तुम्हारा नृत्य होगा। मैं तुम्हें सादर निमंत्रित करता हूँ।

विलासवती—किन्तु, किन्तु मैं तो क्षमा चाहती हूँ देव ?

चंद्रगुप्त—मैं सब जानता हूँ। तुम्हें किसी रूप में भी क्रय नहीं किया जा सकता। किन्तु इस ग्रन्थ के उपलक्ष में होनेवाले उत्सव-नृत्य में क्या तुम्हें कोई आपत्ति है ? यह स्वयं कालिदास का सम्मान है देवि ?

धन्वंतरि—महाराज का अनुरोध है देवि ?

विलासवती—(**सोचकर**) मैं अवश्य आऊँगी।

चंद्रगुप्त—मुझे प्रसन्नता होगी। (**दोनों चले जाते हैं**)।

विलासवती—(**मधुपान करके एक फूल तोड़कर सूँघती हुई**) मेरे जीवन के

प्रिय सहचर, मेरे हृदय के आनंद, तुम्हारी सरस्वती इसी तरह मधु बरसाती रहे यही मेरी आकांक्षा है। (**कुमार-संभव का एक श्लोक गुनगुनाती है। इतने में एक मृग-छौना आकर विलासवती का वस्त्र पकड़ लेता है। विलासवती देखकर आनन्द में मग्न होकर उसे उठा लेती है।**) आतुर, तुम सचमुच बहुत आतुर हो। (**प्यार करके उसे छोड़ देती है। मृग हटकर पास खड़ा हो जाता है**)।

मदनिका—आज प्रातःकाल से यह मृगछौना बार बार लतामंडप में कवि के पास जाता है और निराश सा लौट आता है देवि ?

विलासवती—ज्ञात होता है ध्यानमग्न होने के कारण कवि से इसे प्यार नहीं मिला। मैं स्वयं बहुत विह्वल हो जाती हूँ कभी कभी मदनिके ! जीवन में मैंने एक ही व्यक्ति को हृदय दिया है, एक ही को प्राणदान किया है, और वे हैं कालिदास। देख तो सही वे क्या कर रहे हैं ! (**इतने में कौशेय-पट्ट धारण किये भव्य मूर्ति कालिदास गुनगुनाते आते हैं**) ओ, (**प्रसन्नता दिखाती हुई**) क्या आप लिख चुके ?

कालिदास—(**जिनकी आँखों में मद का उतार झलक रहा है फिर भी मोहक**) तुम्हारे बिना मैं कुछ लिख सकता हूँ क्या ? एक मधुपात्र।

विलासवती—(**मधुकादम्ब लेकर**) लीजिये। मैं वहीं पहुँचा देती। मैंने समझा कि आप लिख रहे हैं इसलिये...।

कालिदास—ज्ञात होता है भगवती पार्वती ने मुझे उनके शृंगार-वर्णन के अपराध में शाप दिया है। इसी कारण मैं यत्न करके भी कुछ नहीं लिख पा रहा हूँ। कुमार-संभव पूर्ण न होगा इसका मुझे खेद है। (**मधुपान करके**) सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण रति-रस किसी प्रकार भी गर्ह्य हो सकता है, यह मेरी समझ में नहीं आता।

विलासवती—हम लोग सभ्य है न ? सब प्रत्यक्ष, अनुमानगम्य होते हुए भी

एक सीमा तक ही तो हमें जाना होगा। किन्तु पार्वती के रति-वर्णन में मुझे तो कोई भी हेय अंश दिखाई नहीं देता। वह तो इतना मनोहर है कि पढ़कर रोमांच होता है। कवि, तुम्हारी वाणी में कितना रस है?

कालिदास—स्फूर्ति तो तुम्हीं हो विलासवती, एक प्रेरणा, जीवन की प्रेरणा, प्राणों का रस। (**श्लोक गाते हैं। बीच में छोड़कर कालिदास विलासवती की जाँघों पर सिर रखकर लेट जाते हैं। विलासवती उनके बालों में हाथ फेरती है। मदनिका पंखा झलती है**) मनुष्य और प्रकृति दोनों में संघर्ष चल रहा है कि कौन अधिक सुन्दर है। मेघ, बिजली, तारक, पूर्णनिशा, नदी, भूधर, कुसुम एक से एक सुन्दर, एक से एक अधिक मोहक हैं। मानों संपूर्ण विश्व का रस, आनंद एक एक में आकर एकत्र हो गया है। किन्तु—

विलासवती—किन्तु...,

कालिदास—मनुष्य इससे भी सुन्दर है। वही तो उस सौन्दर्य का परिज्ञाता है। यदि मनुष्य न होता तो कैसा लगता प्रिये?

विलासवती—जैसे तुम्हारे बिना मैं? (**हँसती है**)

कलिदास—और तुम्हारे बिना मैं कैसा होता जानती हो?

विलासवती—जानती हूँ।

कालिदास—बताओ। (**उठ बैठते हैं आँखों में आँखें डालकर**) बोलो प्रिये?

विलासवती—जाइए, कविता लिखिये। मैं नहीं जानती (**हँसती हुई टहलने लगती है**)

कालिदास—तुमने ठीक संकेत किया। न मैं कवि होता न कुछ, भेड़ें चराता। यही न?

विलासवतो—(**दौड़कर**) नहीं, यह मेरा आशय नहीं प्राणाधार?

कालिदास—यह विश्व चमक रहित स्वर्णखण्ड होता, जो खान से निकलता है। व्यर्थ, सब व्यर्थ।

विलासवती—(पास जाकर) आप न जाने कैसे इतना सुन्दर लिख जाते हैं केवल यह बात मैं यत्न करके भी नहीं जान पाई।

कालिदास—इसमें जानने की क्या बात है। यह भी एक वेग है। मस्तिष्क हृदय से मिला हुआ प्राणों का वेग जिसमें रस की अतिमात्रा है। जैसे तुम्हें देखकर हृदय में एक प्रकार की पुलक, एक प्रकार की प्रसन्नता होती है। उसी प्रकार प्रकृति का सौन्दर्य, उसका विलास देखकर मन में एक प्रकार का आह्लाद होता है। उस आह्लाद को, उस सौन्दर्य को बँधे शब्दों में उतार देने का नाम 'कविता' है। जो कवि जितनी सूक्ष्म भावना को तन्मयता के साथ, आत्मा में व्याप्त रस को पचाकर शब्दों के चित्रों द्वारा, कल्पना की कूर्चिका से मानव के हृदय-पटल पर प्रत्येक हाव, भाव चेष्टा से युक्त खींच सकता है वह उतना ही महान् कवि है!

विलासवती—ठीक है। अभी आप प्रकृति और पुरुष के संघर्ष की बात कह रहे थे न?

कालिदास—हाँ, वस्तुतः पुरुष के भीतर जो सौन्दर्य की एवं ग्राह्य-अग्राह्य की भावना आई है वह प्रकृति के कारण ही तो। पुरुष प्रकृति से ही पल्लवित हुआ है उसके ज्ञान का प्रसार प्रकृति है। इसीलिये लौकिक जीवन में प्रकृति मुख्य है।

विलासवती—आपने एक जगह कहा है मरण प्रकृति है और जीवन विकृति। वह क्या है?

कालिदास—वह दूसरी बात है वहाँ प्रकृति का अर्थ वास्तविकता है। मृत्यु या मूल रूप लय है और जीवन लय का विकार। जैसे कुसुम बीज की

विकृति है इस प्रकार। महाराज चाहते हैं कि प्रभावती के विवाह के लिये एक नाटक लिखा जाय। मैं सोचता हूँ वह कैसा नाटक हो।

विलासवती—रस से छलछलाता हुआ, आनंद से विभोर कर देने वाला। और कैसा प्रियतम! जिसमें झरने की तरह अजस्र गति से आनंद बह निकले।

कालिदास—तुम्हारा रूप मैं उसमें दूँगा विलासवती, तुम्हारे रूप की मादकता उसमें होगी, तुम्हारे हृदय की विशालता उसमें चमकेगी। दर्शक और पाठक कह उठेंगे कि साक्षात् तुम्हीं उसमें प्रमुख पात्र हो।

विलासवती—(**प्रसन्न होकर**) किंतु मैं तुम्हारे बिना उसमें कब चमक सकूँगी कवि?

(**कालिदास एकदम किसी बात का ध्यान आते ही चुप हो जाते हैं। विलासवती उनको उस रूप में देखकर बोलना बन्द कर देती है। मद-निका मधुपात्र लेकर आती है। कवि मधु पात्र पीकर वहीं लिखना प्रारंभ कर देते हैं। लिखते रहते हैं। विलासवती पंखा करती है और रस भरे नेत्रों से उनकी ओर देखती रहती है।**)

(४)

(महाराज चंद्रगुप्त का प्रासाद । उस दिन विशेष रूप से सुसज्जित । रात्रि का समय । मखमली कालीनों और स्थूलोपधानों से युक्त । प्रत्येक व्यक्ति के आसन बने हुए हैं । बोच में महाराज का पादपीठ, उसके वामभाग में महाराज्ञी ध्रुवदेवी का आसन । तदनुसार कुबेर नागा उनकी दूसरी पत्नी का स्थान । दायीं ओर कालिदास तथा अन्य लोगों के बैठने की जगह । सामने वादित्रों के साथ विलासवती के बैठने को जगह । प्रासाद में मणि-चपकों में दीप जल रहे हैं । कुछ में अगरगंध, कस्तूरी की बत्तियाँ जल रही हैं । धीरे धीरे वादित्रकों के साथ विलासवती आती है । उसके बाद राजा-मात्य तथा अन्य कवि । प्रभावती कन्या कुबेरनागा के साथ । फिर ध्रुवदेवी जय घोष के साथ पधारती हैं । ध्रुवदेवी तथा कुबेर नागा के हाथ में नील कमल, केशपाश में बालकुन्द, मुख पर लोध्र-पुष्प का चूर्ण, जूड़ों में कुरवक पुष्प, कानों में शिरीष पुष्प लगे हुए हैं । एक परिचारिका कुमारगुप्त को लिये उनके पीछे आती है । दो परिचारिकाएँ व्यंजन करती हुई पीछे चलती हैं । धीरे धीरे सब लोग आकर बैठ जाते हैं । केवल महाराज और कालिदास का स्थान रिक्त है ।)

राजामात्य—कविवर नहीं आए, क्या कारण है ? महाराज आया ही चाहते हैं ।

धन्वंतरि—कवि आज सर्वथा स्वस्थ हैं, अब तक आ तो जाना चाहिये ।

विलासवती—वे आ ही रहे होंगे महामंत्रिन् ?

ध्रवदेवी—विलासवती, तुम कविवर की प्रेमपात्री हो । आज कवि जिस ग्रन्थ

को भेंट करना चाहते हैं, उसके उपलक्ष में तुम्हारा नृत्य ही उपयुक्त होता इसलिये महाराज से आग्रह करके मैंने तुम्हें बुलाया है।

गणदास—विलासवती कहीं भी नृत्य नहीं करतीं, केवल महादेव के सामने ही ये नृत्य करती हैं, किन्तु महाराज के आग्रह से ही इन्होंने अपनी प्रतिज्ञा भंग की है महाराज्ञी ? ये देवदासी हैं।

ध्रुवदेवी—राजा भी तो देवता होता है, गणदास ?

हरदत्त—मेरी शिष्या माधवी भी देवपाद में ही नृत्य करती थी, किन्तु महाराज ने उसकी नृत्य कला को सर्व प्रथम स्थान दिया, इसलिये उसने महाराज के सम्मुख नृत्य करना स्वीकार किया। वह भी ऐसी वैसी नहीं है।

गणदास—यह सब अप्रासंगिक वार्तालाप है हरदत्त, माधवी का इस समय यहाँ क्या काम ?

हरदत्त—यदि वह आज अस्वस्थ न होती तो विलासवती की आवश्यकता भी नहीं थी, गणदास।

ध्रुवदेवी—नहीं नहीं, मेरे विशेष अनुरोध से ही विलासवती को सादर आमंत्रित किया गया है।

राजामात्य—(**अपनी श्वेत दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए**) महाराज्ञी यथार्थ कहती हैं हरदत्त।

(जय घोष के साथ महाराज आते हैं। सब खड़े हो जाते हैं। चंद्रगुप्त बैठते हैं)

चन्द्रगुप्त—कालिदास नहीं आए ?

राजामात्य—महाप्रभु, आ रहे हैं।

(महाराज के संकेत से विलासवती नृत्य करती हैं इसी समय कालिदास आ जाते हैं। घुँघरू बजते ही सब व्यक्ति सतर्क हो उठते हैं—पुष्पोद्गम नृत्य-ध्वनि)

छम छम छम छम—!

छनन, छनन, छन—छम, छम, छम।

झूम, झूम, झूम, झूम, भूमि चूम, नभ चूम,
गीति छुम, स्वर छुम, लय छुम, ताल छुम,
मूर्छना-विमूर्छना प्ररोह-अवरोह छुम,
गति यति छुम छुम, ध्वनि छुम, छुम, छुम,
पवन भी गई जम, हृदय की गति थम,
विरति में छुम, छुम, रति-यति, छुम ।

(ताण्डव का मेघ के उद्गम के साथ नृत्य)

शिव के डमरू सम, मेघ की गरज गम,
डम डम डम डम गमक गमक गम ।
छुम, छुम, छुम, छुम, छुम, छुम,
छुनन, छुनन, छुन - छुम छुम छुम ।

(इसकी पुनरावृत्ति होती है । मदोन्मत्त से सब पारिषद्य धन्य धन्य कह उठते हैं, नृत्य समाप्त होता है, सभा में निस्तब्धता छा जाती है । बहुत देर बाद ।)

चंद्रगुप्त—धन्य है विलासवती धन्य है । ऐसा नृत्य तो आज तक नहीं देखा ?

ध्रुवदेवी—साक्षात् शिव ताण्डव। मेघ भी घिर आए, बिजली भी चमकने लगी ।

(एक एक करके महाराज महाराज्ञी तथा राज्ञी कुवेर नागा अपना अपना रत्नहार विलासवती को भेंट करती हैं)

चंद्रगुप्त—कविवर, ग्रंथ तो समाप्त हो गया न ?

कालिदास—(उदासीन होकर) आगे की कथा नहीं लिख सकता, देव !

चन्द्रगुप्त—क्यों ?

कालिदास—सम्भव नहीं है,लेखनी मूक हो गई है, यत्न करके भी नहीं लिख पाया।

चन्द्रगुप्त—कारण ?

कालिदास—कारण मैं स्वयं नहीं जानता । लिखने बैठता हूँ तो लेखनी रुक जाती है ।

ध्रुवदेवी—यत्न करो कविवर, मेरे पुत्र को दिया जानेवाला ग्रंथ पूर्ण होना ही चाहिये।

कालिंदास—इस ग्रन्थ की अपूर्णता ही पूर्णता है। विश्वास कीजिये देवि, कुमार संभव इससे आगे नहीं लिखा जा सकता।

चन्द्रगुप्त—आश्चर्य है इतना सुन्दर काव्य और पूर्ण न हुआ।

ध्रुवदेवी—कविवर, आप कवि हैं। कवि भूत, भविष्यत्, वर्तमान का द्रष्टा होता है। क्या कारण है जो आप इसे पूर्ण नहीं कर सके?

चन्द्रगुप्त—विश्वास नहीं होता। जो आप चाहें वह न हो। आपके संकेतों पर राज्यों में परिवर्तन, प्रजा में नया विश्वास उत्पन्न किया जा सकता है।

ध्रुवदेवी—तो क्या कारण है?

कालिदास—कारण, कारण कवि स्वयं नहीं जानता।

ध्रुवदेवी—मेरी प्रार्थना है काव्य पूरा कीजिये। अपूर्ण काव्य मेरे कुमार का अपमान है।

कालिदास—मानापमान मैं कुछ नहीं जानता। कविता प्रेरणा है, न जाने क्यों मेरी प्रेरणा कुंठित हो गई है। मुझे ज्ञात हो गया इस काव्य का आगे लिखा जाना असंभव है।

ध्रुवदेवी—तो मानना होगा आपका कवित्व समाप्त हो गया?

चन्द्रगुप्त—नहीं, ऐसा मत कहो। रघुवंश लिखा जा रहा है। उसकी गति में कोई व्यवधान नहीं है।

कालिदास—हाँ, रघुवंश लिखने की प्रेरणा बराबर बढ़ रही है। जब जब कुमार-संभव लिखने बैठा तभी रघुवंश के छंद, कथा लिख जाता रहा हूँ। लीजिये यह आपकी भेंट है।

ध्रुवदेवी—अपूर्ण ग्रंथ मैं स्वीकार नहीं कर सकती। (**अचानक बालक रोने लगता है।**) मैंने बड़े आग्रह के साथ आपसे प्रार्थना की थी, किन्तु आपने उसे ठुकरा दिया, कविवर!

कालिदास—(दृढ़ता से) देवि, मैं विवश हूँ। कवि की भाषा इस काव्य के सम्बन्ध में मूक हो गई है। (कालिदास का स्वर दृढ़, नेत्रों से ज्योति स्फुल्लिंग निकलते हैं, कभी वे नेत्र बन्द कर लेते हैं)।

ध्रुवदेवी—तो रहने दीजिये मुझे यह स्वीकार नहीं है, कविवर ? (इतना कहते ही बालक वेग से रोने लगता है। ध्रुवदेवी की परिचारिका के चुप कराने तथा पुचकारने पर भी बालक गला फाड़ फाड़कर रोता ही रहता है। ध्रुवदेवी परिचारिका के साथ बालक को लेकर चली जाती है, बालक के रोने की आवाज़ आती रहती है। ध्रुवदेवी फिर लौट आती हैं।) न जाने कुमार को क्या हो गया ?

वराहमिहिर—देवि, हमको कवि का ग्रंथ स्वीकार करना ही होगा। इसी में बालक का कल्याण है।

ध्रुवदेवी—(चुप)

कुवेरनागा—महारानी, सरस्वती का, कवि का अपमान मत कीजिये। (बालक के रोने की ध्वनि) परिचारिका ?

परिचारिका—कुमार बहुत रो रहे हैं, उनका स्वर रोते रोते बैठ गया है।

चन्द्रगुप्त—देवि, विधाता की इच्छा है कि ग्रंथ को अस्वीकार न किया जाय। (कालिदास जाने लगते हैं) ठहरिये कविवर, इसमें आपका दोष नहींहै।

परिचारिका—महारानी, बालक असंज्ञ हो रहा है। (ध्रुवदेवी चली जाती है)

वराहमिहिर—महाराज (पास जाकर) यदि यह ग्रंथ कुमार को भेंट न किया गया तो अनर्थ हो जायगा। कवि का नहीं भगवती सरस्वती का अपमान है।

राजामात्य—महाराज, आपने जो स्वप्न देखा था, यह उसी का प्रभाव है। नारद स्वयं कह गए थे कि काव्य के पूर्ण होने की संभावना कम है।

वराहमिहिर—यदि सरस्वती रूठ जातीं तो रघुवंश भी अपूर्ण रहना चाहिये। यह बात मेरी समझ में नहीं आती ? कालिदास झूठ नहीं कहते। महा-

राज, इसी में साम्राज्य का कल्याण है कि ग्रंथ कुमार को भेंट किया जाय।

चंद्रगुप्त—वराहमिहिर मैं क्या करूँ। महारानी नहीं चाहतीं।

वराहमिहिर—महारानी को चाहना होगा। बालक उस समय तक रोना बंद नहीं करेगा जब तक ग्रंथ उसे भेंट नहीं किया जायगा। (**रोने की ध्वनि आती है**)

चंद्रगुप्त—बड़ा आश्चर्य है, वराहमिहिर !

राजामात्य—बड़ा आश्चर्य है, महाप्रभु। (**कालिदास जाने लगते हैं**)

चंद्रगुप्त—ठहरिये कविवर ! (**बालक को लिये हुए ध्रुवदेवी आती हैं**)

ध्रुवदेवी—महाराज न जाने कुमार को क्या हो गया ?

चंद्रगुप्त—देवी, हमको यह ग्रंथ स्वीकार करना ही होगा, इसी में बालक का कल्याण है।

(**ध्रुवदेवी चुप रहती हैं**)

कुबेरनागा—महारानी, इस तरह कवि का अपमान मत कीजिये, चलिए।

ध्रुवदेवी—(**पास जाकर**) कविवर, मैं आपका ग्रंथ सहर्ष स्वीकार करती हूँ।

चंद्रगुप्त—यही उचित है, देवी।

(**ग्रंथ लेकर आगे बढ़ते ही बालक चुप हो जाता है। कवि बालक को ग्रन्थ स्पर्श कराकर ध्रुवदेवी को भेंट करते हैं। आकाश में मेघ गरजने लगते हैं, बिजली कड़कती है। कालिदास ग्रन्थ भेंट करते हुए नेत्र बंद करके कहते हैं:—**

अनवाप्तमवाप्तव्यं न किंचन विद्यते
लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः।

ध्रुवदेवी बालक को गोद में लेकर ग्रन्थ स्वीकार करती हैं, चन्द्रगुप्त सिर झुकाए खड़े हो जाते हैं। जयघोष होता है, कविवर कालिदास की जय।

समाप्त